डेविड ऑसबरॉ
और
नीलबाग
स्कूल
सं. राजाराम भादू

बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक में डेविड ऑसबर्गे ने अपना शिक्षा-प्रयोग आरम्भ किया। दक्षिण भारत के एक छोटे से गांव नीलबाग में संचालित स्कूल उनकी प्रयोगस्थली था। आने वाले दशकों की शिक्षा को डेविड ऑसबर्गे के शिक्षा चिन्तन और नीलबाग के अनुभव ने गुणात्मक रूप से प्रभावित किया।

डेविड ऑसबर्गे के शैक्षिक विचार और नीलबाग के शिक्षा प्रयोग का अपेक्षित प्रचार-प्रसार नहीं हुआ है।लेकिन प्रारम्भिक स्तर पर भिन्न पृष्ठभूमि के संदर्भ में इसकी व्यावहारिक गुणवत्ता प्रभावी साबित हुई है। इसलिए इसे आगे ले जाना सच्चे अर्थों में लोकतांत्रिक समाज के लिए एक जरूरी कार्यभार है। नीलबाग शिक्षा प्रयोग और डेविड के विचार इसीलिए अपनी महत्ता और प्रासंगिकता रखते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में डेविड के विचारों और नीलबाग के शैक्षिक वातावरण और उसमें प्रयुक्त पद्धतियों की एक झलक प्रस्तुत करने का प्रयास है। पुस्तक में डेविड के लेख, साक्षात्कार, नीलबाग स्कूल पर केन्द्रित सामग्री और उन पर मूल्यांकनपरक लेख व संस्मरण शामिल किए गए हैं।

उम्मीद है यह पुस्तक नीलबाग शिक्षा-प्रयोग की भविष्य में व्यापक एवं गहरी समीक्षा के लिए आधार-भूमि बनाने में सहायक सिद्ध होगी।

डेविड ऑसबरॉ और नीलबाग स्कूल

डेविड ऑसबरॉ
और
नीलबाग स्कूल

संपादक

राजाराम भादू

आधार प्रकाशन
पंचकूला (हरियाणा)

नीलबाग स्कूल के बच्चों के नाम

ISBN : 978-81-7675-203-9

मूल्य	:	150 रुपये
सर्वाधिकार	:	नीलबाग ट्रस्ट, कोलार
प्रथम संस्करण	:	2007
प्रकाशक	:	आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड एस.सी.एफ. 267, सेक्टर-16 पंचकूला-134 113 (हरियाणा) E-mail : aadhar_prakashan@yahoo.com
आवरण	:	प्रियंका
लेज़र टाईपसेटिंग	:	आधार ग्राफ़िक्स, पंचकूला (हरियाणा)
मुद्रक	:	बी.के. आफसेट, नवीन शाहदरा, दिल्ली

David Horsburgh Aur Neelbagh School
Ed. by Rajaram Bhadu

Price : Rs 150.00

क्रम

शिक्षा उनके समग्र चिंतन का एक आयाम थी, बेशक यह उनके लिए महत्त्वपूर्ण आयाम था। किन्तु ये शिक्षा के क्षेत्र में व्यावहारिक रूप से काम करने वाले— प्रेक्टिशनर— नहीं थे। इसलिए ये अपने शिक्षा-आदर्शों को व्यवहार की कसौटी पर कसकर उन्हें दीर्घकालिक स्थायित्व दे सकने वाले शैक्षिक-सिद्धांतों में नहीं ढाल पाए। हम देखते हैं कि यह चिंतन व्यवहार में आगे नहीं जाता और एक कालखंड में अपनी स्वर्णिम उपस्थिति दर्ज कराकर अवरुद्ध हो जाता है।

इनसे भिन्न डेविड ऑसब्रॉ का चिंतन उनके व्यावहारिक प्रयोगों से पुष्ट और समृद्ध है। नीलबाग स्कूल से प्रस्यूत इनके शैक्षिक सिद्धान्त भले ही विशिष्ट देशज संदर्भों से निसृत होते हैं लेकिन ये एक तरह की सार्वजनीनता रखते हैं। यही कारण है कि नीलबाग के ग्रामीण छात्र लंदन के विश्वविद्यालयों में भी सहजता से प्रवेश पा लेते हैं। नीलबाग में काम करते हुए डेविड की लिखी किताबें ऑक्सफोर्ड प्रेस से छपती हैं और दुनिया भर में अंग्रेजी माध्यम से पढ़ने वाले बच्चों के लिए उपयोगी साबित होती हैं। नीलबाग स्कूल में मातृभाषा के अतिरिक्त और भाषाएं भी सिखाई जाती हैं और बच्चे इनमें एक हद तक निष्णात भी हो जाते हैं। ऐसा इसलिए संभव होता है कि उनका भाषाशिक्षण भाषा वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित है। डेविड पेंटिंग, संगीत और साहित्य के बारे में भी सिखाते हैं लेकिन इसके पीछे कोई आदर्शवादी अतिरेक नहीं है। बल्कि बच्चों में सौन्दर्यबोध और कला-आस्वादन के लिए सहज आस्वादन बोध विकसित करना है। ऐसा नहीं है कि उनकी शिक्षण शास्त्रीय मान्यताओं का कोई दार्शनिक आधार नहीं है। वे मानववादी लोकतांत्रिक चेतना की गहरी प्रतिबद्धता से अनुप्राणित हैं।

डेविड ऑसब्रॉ के शैक्षिक विचार और नीलबाग के शिक्षा प्रयोग का भी अपेक्षित प्रचार-प्रसार नहीं हुआ। लेकिन प्रारंभिक स्तर पर भिन्न पृष्ठभूमि के बच्चों के संदर्भ में इसकी व्यावहारिक गुणवत्ता प्रभावी साबित हुई है। इसलिए इसे आगे ले जाना सच्चे अर्थों में लोकतांत्रिक समाज के लिए एक जरूरी कार्यभार है। नीलबाग शिक्षा प्रयोग और डेविड के विचार इसीलिए अपनी महत्ता और प्रासंगिकता रखते हैं।

प्रस्तुत संकलन में डेविड के विचारों और नीलबाग स्कूल के शैक्षिक वातावरण और उसमें प्रयुक्त पद्धतियों की एक झलक प्रस्तुत करने का प्रयास है। आरंभ में डेविड के दो लेख हैं। पहले लेख में उन्होंने बच्चों के सीखने की प्रक्रिया में उन गतिविधियों का महत्त्व प्रतिपादित किया है जिनकी महज इसलिए उपेक्षा की जाती है कि इन्हें (परीक्षा की दृष्टि से) मापा नहीं जा सकता।

बच्चे के शैक्षिक आकलन की पद्धतियों ने इधर काफी प्रगति की है किन्तु कई सृजनशील गतिविधियां अभी भी इनकी परिधि से बाहर हैं। यह इन गतिविधियों की संश्लिष्टता है जो मूल्यांकन के लिए आज भी चुनौती बनी है। जबकि प्रत्येक शिक्षा आयोग इनका समर्थन करता है। कोठारी आयोग (1986) की रिपोर्ट में कहा गया है : *खोज और आविष्कार को महत्त्वपूर्ण मानने वाले युग में सृजनात्मक अभिव्यक्ति विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हो जाती है। शिक्षा में कला की अवहेलना से शिक्षण-प्रक्रिया दरिद्र हो जाती है।*

दूसरे लेख में परीक्षा-प्रणाली की तीखी किन्तु वस्तुपरक आलोचना है। शिक्षण की मूल्यांकन-प्रक्रिया ऐसा आईना है जिसमें उस शिक्षण-प्रणाली के पीछे रही सोच की गंभीरता या छिछलेपन का अक्स देखा जा सकता है। भारतीय शिक्षा-व्यवस्था की मौजूदा मूल्यांकन-प्रणाली को डेविड 'घनचक्कर की पहेली योजना' कहते हैं। इसकी व्यावहारिक परिणति इस वृत्तान्त में उजागर होती है। ग्रैड-गाइंड महाशय कहते हैं, 'हमें इन लड़कियों को तथ्यों के अलावा कुछ नहीं पढ़ाना चाहिए।' परिणामस्वरूप लुइसा तथ्यों की शिक्षा प्राप्ति व असफल वैवाहिक जीवन के बाद अपने पिता से कहती है- 'आपने यदि मुझे अपनी कल्पनाशक्ति का कुछ भी अभ्यास करने दिया होता तो मैं आज लाखों गुणा ज्यादा बुद्धिमान होती।' यह लेख 1980 के आसपास लिखा गया लगता है। पर इसमें न्यूनतम अधिगम स्तर की पदचाप साफ सुनाई दे रही है और यह इसी खतरे की तरफ इशारा करता हुआ लगता है।

डेविड ऑसबरॉ के विचारों को सामने लाने के लिहाज से रोजलिंड विल्सन से उनकी बातचीत बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस साक्षात्कार के साथ प्रकाशन के समय इंडिया इंटरनेशनल सेन्टर क्वार्टली (वाल्यूम 10, नवंबर 1, 1983) पत्रिका के संपादक की यह टिप्पणी छपी थी : *बच्चों की पुस्तक के लेखक के रूप में डेविड ऑसबरॉ का नाम सुपरिचित है। भारत में ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा प्रकाशित उनकी पुस्तकें गणित से लेकर पर्यावरण तक तमाम विषयों से सम्बन्धित हैं। ऑसबरॉ ने कई वर्ष कृष्णमूर्ति के ऋषिवेली स्कूल में शिक्षण कार्य किया, बाद में ब्रिटिश काउंसिल की सेवा में रहे और अन्ततः उन्होंने बंगलौर के निकट एक छोटे से गांव में स्वयं अपना स्कूल शुरू करने का फैसला कर लिया।*

स्कूल में इस समय 2 साल से 21 साल तक की उम्र के 27 छात्र हैं। सामान्य रूप से प्रचलित क्लासरूम प्रणाली का सहारा नहीं लिया जाता है क्योंकि सभी छात्र यहां एक साथ बैठते हैं। परीक्षा प्रणाली का अस्तित्व ही नहीं है। स्कूल में प्रत्येक बच्चा अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार चीजों को जानता और सीखता

है। सीखना यहां शिक्षक तथा छात्र दोनों के लिए एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है।

इसके क्या नतीजे रहे ? जब डेविड ऑसबरॉ इंडिया इंटरनेशनल सेन्टर में ठहरे हुए थे तो हम उनसे यह विशेष बातचीत आयोजित कर पाए। साक्षात्कारकर्ता हैं बच्चों की पत्रिका 'टॉरगेट' की संपादक रोजलिंड विल्सन।

नीलबाग स्कूल में प्रयुक्त शिक्षा-दर्शन, शिक्षण-पद्धति और प्रशिक्षण पर डेविड ऑसबरॉ ने एक संक्षिप्त पुस्तिका जारी की थी। यह पुस्तिका डेविड की मृत्यु से कुछ समय पहले प्रसारित हुई। इस समय तक डेविड के शिक्षा विषयक विचार और नीलबाग स्कूल को लेकर लोगों की दिलचस्पी काफी बढ़ गई थी। संकलन में इस पुस्तिका का अनुवाद शामिल है जो नीलबाग के शिक्षा-प्रयोग से तो परिचित कराता ही है, शिक्षा के जमीनी स्तर पर जुड़े लोगों को प्रेरणा और मार्गदर्शन का स्रोत भी हो सकता है।

डेविड ऑसबरॉ एक शिक्षा-चिंतक, प्रयोगशील शिक्षक और समर्थ लेखक तो थे ही, साथ ही एक संवेदनशील कवि भी थे। व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में शिक्षा एक सार्थक उपक्रम बन सके, इसके लिए डेविड विविध कला-अनुशासनों को शैक्षिक प्रक्रिया का अभिन्न अंग बनाने के लिए अनथक प्रयास करते रहे। एक दार्शनिक जैसी जिज्ञासा और सौन्दर्यशास्त्री की मर्मज्ञता इन कविताओं में भी प्रतिबिम्बित होती है जो डेविड के समूचे जीवन-कर्म और कृतित्व की विशेषता है। पहली कविता बच्चों के लिए लिखी छंदबद्ध कविता का रागात्मक रूपान्तरण है जबकि दूसरी कविता डेविड ने प्रचलित शिल्प में ही लिखी थी। ये उनकी दर्जन भर कविताओं में से चुनी गई हैं। इनके रूपान्तरकार हैं प्रो. मोहन श्रोत्रिय।

आम तरीका (पढ़ाने का) छात्र के कान में चिल्लाते रहने का है जैसे कि कोई कीप में पानी डाल रहा हो और लड़के का काम जो कहा गया है उसे दोहरा देने भर का है। मैं चाहूंगा कि शिक्षक इस स्थिति में सुधार करे और सीधा उस विभाग को अपनी सामर्थ्य के अनुसार काम में लेने के लिए अभ्यास से आरंभ करे जिसका कि वह प्रशिक्षण कर रहा है। उसे चाहिए कि अपने शिष्यों से चीजों की जांच करवाए, चुनाव करवाए और उनके अपने बोध के अनुसार चीजों में फर्क करने दे।

कभी-कभी वह स्वयं भी ये सब करे। मैं नहीं चाहता कि वह (शिक्षक) स्वयं ही सब कुछ आरंभ करे और केवल वही बोलता रहे, बल्कि अपने शिष्य को भी मौका दे और उसकी बात सुने। सुकरात और उसके बाद आरसिसिलस पहले अपने शिष्यों को बोलने देते थे और फिर उनसे अपनी बात कहते थे।

सीखने वालों का प्रभुत्व बहुत बार सीखना चाहने वालों के लिए बाधा बन जाता है। डेविड ऑसबरॉ ने अपनी पाठ्यपुस्तक 'लेट्स डिस्कवर साइंस' की भूमिका में इस उक्ति को उद्धृत करते हुए लिखा था। *यह उद्धरण शिक्षा जगत में किसी आधुनिक लेखक का नहीं है बल्कि आज से 400 वर्ष पहले मोन्टेन का लिखा है जो आज भी ऐसे विचार प्रस्तुत करता है जो हमारे बहुत से स्कूलों के लिए तो बिल्कुल नए हैं।* प्रस्तुत संकलन के दो लेख डेविड की पाठ्यपुस्तकों पर केन्द्रित हैं और उनमें निहित सिद्धान्तों को उद्घाटित करते हैं। ये सिद्धान्त ऐसे समय में और प्रासंगिक हैं जबकि पाठ्यपुस्तकों को लेकर संकीर्ण और पूर्वाग्रह से प्रेरित विवाद होते रहते हैं।

डेविड ऑसबरॉ ने अपनी पुस्तकों के अनेक रेखांकन स्वयं किए। उनकी रेखाओं में गति और लय है। उनके बनाए रेखाचित्र परिवेश का यथार्थ और जीवंत प्रतिबिंबन करते हैं। चित्र सहज रूप में अन्तर्वस्तु से घुले-मिले हैं। डेविड के ये रेखांकन कला में उनकी गहरी रुचि और सूझ के प्रमाण हैं। संकलन में उनकी एक बानगी प्रस्तुत की जा रही है।

डेविड ऑसबरॉ एक अद्भुत शख्सियत थे, एक किस्म की परिघटना। यानि गर्मजोशी से भरे जोशीले, रचनात्मक व्यक्ति और करिश्माई शिक्षक। डेविड जन्म से अंग्रेज, वर्ण से भारतीय और मिजाज से विश्व नागरिक थे। डेविड ऑसबरॉ के व्यक्तित्व और शिक्षा-दृष्टि का यह संस्मरणात्मक आकलन कर रही हैं एस. आनंद लक्ष्मी, जो उनके निकट सम्पर्क में रही हैं। दूसरा संस्मरणात्मक आलेख नीलबाग स्कूल पर केन्द्रित है जो अमुक्ता ने लिखा है। अमुक्ता यूनीसेफ भुवनेश्वर में शिक्षा सलाहकार हैं। ये दोनों आलेख हिंदू में क्रमश: 21 सितंबर 1977 और 11 जनवरी 2004 के अंकों में छपे हैं। डेविड और नीलबाग पर रोहित धनकर का लेख दो टिप्पणियों को मिलाकर तैयार किया गया है। पहली टिप्पणी नवंबर 1984 में शिविरा में छपी थी, जबकि दूसरी विमर्श पत्रिका के डेविड और नीलबाग पर केन्द्रित अंक (अगस्त-सितंबर 1988) के आमुख के तौर पर लिखी गई थी। रोहित ने डेविड से प्रशिक्षण हासिल किया था और इनके द्वारा शुरू किए गए दिगंतर शिक्षा प्रयोग को वर्षों डेविड का मार्गदर्शन मिलता रहा था।

नीलबाग शिक्षा-प्रयोग को आगे बढ़ाने के लिए 1974 में नीलबाग ट्रस्ट की स्थापना की गई। लेकिन ट्रस्ट लगातार विषम स्थितियों, विशेषकर वित्तीय समस्या से जूझता रहा। ट्रस्ट के एक दशक पूरा होने के उपरांत जारी एक रपट एक स्वप्नदृष्टा के कार्यकलाप को जारी रखने के लिए की गई जद्दोजहद का दस्तावेज

है। यह रपट एक दशक बाद नीलबाग स्कूल में अध्ययनरत बालकों की शैक्षणिक प्रगति की तथा नीलबाग की प्रेरणा से एक दशक में आरंभ हुए स्कूलों की एक झलक भी देती है।

यह संकलन न तो नीलबाग और उसकी उपलब्धियों की पूरी समीक्षा करने का प्रयत्न है, न ही डेविड ऑसबरॉ के व्यक्तित्व की। यह तो उपलब्ध सामग्री को कुछ और लोगों से बांटने का प्रयास भर है। यहां उल्लेख करना जरूरी है कि इसमें से अधिकांश सामग्री रोहित धनकर के निजी संग्रह से हासिल हुई थी और दिगंतर (जयपुर) द्वारा प्रकाशित पत्रिका विमर्श में डेविड और नीलबाग पर केन्द्रित अंक में प्रकाशित हुई थी। यह अंक इन पंक्तियों के लेखक द्वारा ही संपादित किया गया था। प्रस्तुत संकलन नीलबाग शिक्षा-प्रयोग की भविष्य में व्यापक एवं गहरी समीक्षा के लिए आधार-भूमि बनाने का एक प्रयास है।

—राजाराम भादू

खंड : एक

डेविड और नीलबाग

अमाप्य गतिविधियों का महत्त्व

काम के कई पहलू बहुधा शिक्षाक्रम से बाहर छोड़ दिए जाते हैं। इस लेख में उन्हें शिक्षाक्रम में शामिल करने के लिए कुछ आधारों को स्पष्ट करने का अति-संक्षेप में प्रयास किया गया है। काम के इन पहलुओं को कई बार सीखने के अमाप्य (नॉन-मेजरेबल) क्षेत्र कहा जाता है, क्योंकि इनका मूल्यांकन शिक्षाक्रम के सामान्य विषयों की तुलना में अधिक मुश्किल है। इस संक्षिप्त लेख में तो इन विषयों पर सविस्तार विवेचना संभव नहीं होगी, पर आगे आने वाले लेखों में इसके लिए प्रयास होंगे।

इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण विषय है : कला, हस्तशिल्प, नृत्य, नाट्य, संगीत और गायन, बागवानी तथा पर्यावरण का अध्ययन। तीन अन्य विषय, जो उपरोक्त से बहुत नजदीकी संबंध रखते हैं, वे है: निर्णय लेना, विमर्श तथा नैतिकता।

उपरोक्त में से कई या सभी विषय सामान्यतया सुविधापूर्वक शिक्षाक्रम से बाहर रह जाते हैं। यदि किसी कारणवश इन्हें शिक्षाक्रम मे लिख भी दिया जाता है तो शिक्षक इनकी कोई परवाह नहीं करते, अत: विद्यालय की रोजमर्रा की गतिविधियों का हिस्सा ये कभी नहीं बन पाते।

इस प्रकार की गतिविधियों को प्राय: छोड़ क्यों दिया जाता है ?

पहली बात तो यह कि बाल शिक्षा में इन गतिविधियों के महत्त्व की कोई वास्तविक समझ ही नहीं है। अधिक से अधिक इनको हॉबीज के रूप में देखा जाता है। ऐसी गतिविधियों के रूप में कि जो बच्चों को या तो व्यस्त रखने के लिए या उन्हें सामान्य विद्यालयी विषयों के गंभीर अध्ययन से बदलाव का मौका देने के लिए कार्रवाई की जा सके।

अगली बात यह कि ये सामान्यतया शिक्षाक्रम में नहीं होते, इनके लिए कोई सुविचारित एवं व्यावहारिक पाठ्यक्रम शायद ही कभी पाया जाता हो, इन्हें

विद्यालयों की समय-सारणी में नहीं रखा जाता और उन संस्थानों में इनका अध्ययन नहीं होता जो सेवापूर्व प्रशिक्षण देते हैं। इसका अर्थ यह है कि अधिकतर शिक्षकों में, उनके अपने शिक्षक-प्रशिक्षण के कारण और अपनी विद्यालयी शिक्षा के अनुभवों के कारण इन गतिविधियों के लिए आवश्यक क्षमता ही नहीं होती। और वे इन गतिविधियों के लिए आवश्यक अभिप्रेरणा भी बच्चों को नहीं दे सकते।

अगला कारण, वर्तमान शिक्षा केवल सूचना से सरोकार रखती है। बच्चे के पहली कक्षा में प्रवेश से लेकर, उसके विद्यार्थी बनने एवं स्नातक परीक्षा उतीर्ण करने तक उसकी शिक्षा का पूरा बल असंबद्ध जानकारी के टुकड़े रटने पर ही रहता है, जो प्रथम अवसर मिलते ही शीघ्रता से भुला दिए जाते हैं। अमाप्य गतिविधियों के शिक्षण के लिए अलग प्रकार की शिक्षण-विधि एवं एक बच्चे के सीखने के प्रति इन भिन्न दृष्टिकोण की जरूरत होती है। बहुत ही कम शिक्षक इन विधियों एवं दृष्टिकोण को सीखने-समझने के लिए आवश्यक क्षमतावान है या समय देने को तैयार है।

अंत में, इनका मूल्यांकन कठिन है और कई बार असंभव है। और क्योंकि सभी मूल्यांकन विशेषज्ञों की यह अभ्युक्ति है कि जो सीखा जाए उसका मूल्यांकन अवश्य हो, अत: ये गतिविधियां शैक्षणिक प्रक्रिया का हिस्सा कभी नहीं बनतीं। शिक्षाक्रम में इनकी अनुपस्थिति के लिए इतने वजनी कारणों को देखते हुए पूछा जा सकता है कि आखिर इन गतिविधियों की उपयोगिता क्या है? इनको महत्त्व दिए जाने के कई कारण हैं। इन कारणों का जिक्र मैं अलग-अलग अनुच्छेदों में करूंगा।

1. ये गतिविधियां बच्चे के बौद्धिक विकास के लिए अत्यावश्यक हैं। आश्चर्य की बात यह है कि प्रत्येक शिक्षाशास्त्री, प्रत्येक शिक्षाविभाग और प्रत्येक शिक्षा आयोग सिद्धांत में इन गतिविधियों का समर्थन करता है। ऐसे बहुत से उदाहरणों में से एक कोठारी आयोग की 1986 की रिपोर्ट से यहां उद्धृत कर रहे हैं : ''खोज और अविष्कार को महत्त्वपूर्ण मानने वाले युग में सृजनात्मक अभिव्यक्ति विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हो जाती है। शिक्षा में कला की अवहेलना से शिक्षण-प्रक्रिया दरिद्र हो जाती है।''

   वर्तमान शिक्षा प्रणाली से अधिक दरिद्र कुछ नहीं हो सकता। मेरे विचार से शाला त्यागी बच्चों में त्रासद प्रतिशत (पांचवीं तक 70 प्रतिशत) के मुख्य कारण आर्थिक नहीं बालक अभिप्रेरण एवं आनन्द की कमी है। स्कूल एक नीरस, दु:खदायी और अनुपयोगी गतिविधि है और यही कारण है कि बच्चे जैसे ही संभव होता है, इसे छोड़ देते हैं।

2. ये गतिविधियां उपयोगी हैं क्योंकि सामान्यत: इनका सरोकार समस्या समाधान से होता है और जानकारी देने से कुछ खास सरोकार नहीं होता। यह सही है कि चूंकि स्वयं शिक्षक को इस तरह की गतिविधियों में अपने विद्यालय या महाविद्यालय में भागीदारी का लाभ नहीं मिला होता है, अत: उसे इनमें काम करवाना मुश्किल लगता है। इस कारण बहुत बार वह इन्हें सूचना देने वाले विषयों में परिणित कर देता है और इसी तरह उनका मूल्यांकन करता है। उदाहरण के लिए शिक्षक श्यामपट्ट पर एक फूल बना देगा और कला शिक्षण में बच्चों को अपनी कापी में उसकी नकल करने को कह देगा। इस तरह बच्चों नें हूबहू नकल की या नहीं की, इसके अनुसार उन्हें 10 में से कोई नम्बर देना संभव हो जाता है। यदि सब बच्चे भिन्न-भिन्न चीजें बनाएंगे तो उनका मूल्यांकन कैसे होगा?

   दुर्भाग्य से, आजकल बहुत ही कम विद्यालयी विषयों में बच्चों की समस्या समाधान संबंधी गतिविधियों में मशगूल होने की अनुमति मिल पाती है। आरंभिक कक्षाओं में बच्चे जो कुछ भी सीखते हैं, वह सूचना भर होती है। उदाहरणार्थ, मातृभाषा शिक्षण में भी बच्चा पुस्तक को रट लेता है और उसे अपने वाक्य बनाने का या भाषा का इस प्रकार उपयोग करने का जिसमें समस्या समाधान लाजमी हो उसे कोई मौका नहीं मिलता। ऊपर वर्णित गतिविधियां बच्चे को समस्या समाधान का बहुत अभ्यास और अवसर प्रदान करती हैं, जो कि उसे अन्य विषयों में नहीं मिलता।

3. इन गतिविधियों का एक और लाभ अवधारणा निर्माण के क्षेत्र में है। वर्तमान विद्यालयी पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों में अवधारणा बनाना लगभग पूरी तरह अनुपस्थित है। पर हस्तशिल्प, नाटक आदि गतिविधियों में बच्चों को कई अवसर मिलेंगे, जहां वे नई अवधारणाएं सीख सकेंगे या उन अवधारणाओं को दोहरा सकेंगे जो पहले ठीक से नहीं सीखी गई हैं।

4. विद्यालय में झांकने भर से ही स्पष्ट हो जाएगा कि पूरे दिन में एक सामान्य बच्चे को अपने निर्णय लेने का कोई अवसर नहीं मिलता।

उसे कक्षा में क्या करना है, क्या पढ़ना है, कौन से सवाल करने हैं, क्या लिखना है और ये सब कब करना है- इस तरह के निर्णय उसके लिए पहले ही शिक्षक ने कर लिए हैं, उसे क्या पढ़ना है- यह तो पाठ्यपुस्तक ने ही तय कर दिया है। उपरोक्त गतिविधियों का एक लाभ यह है कि यदि उन्हें ठीक से करवाया जाए तो इनमें बच्चों को अपने निर्णय करने के असंख्य अवसर मिलेंगे। साफ ही है कि निर्णय ले सकना जीवन के लिए एक महत्त्वपूर्ण क्षमता है और इतना ही साफ यह भी है कि अधिकांश विद्यालयों में इस क्षमता का दारुण अभाव है।

5. अगला लाभ यह है कि ये गतिविधियां नितांत आनन्ददायक हैं। बच्चों को चीजें बनाने में मजा आ ा है, उन्हें गाना, नाचना और नाटक बेहद पसंद होता है। बहुधा यही वे गतिविधियां होती हैं जिनके माध्यम से बच्चे को शिक्षा से सच्चा लगाव पैदा होता है और इन्हीं दक्षताओं के माध्यम से, तथा इनसे मिलने वाले आनन्द के कारण, और वास्तव में तो इनमें प्राप्त सफलता के कारण ही बच्चे को वह अभिप्रेरण मिलता है जो शिक्षण प्रक्रिया का निहायत ही जरूरी हिस्सा है।
6. एक और लाभ इन गतिविधियों का यह है कि बच्चा जो भाषा, गणित एवं विज्ञान में सीखता है, उसको हस्तशिल्प में किए गए काम से जोड़ने वाली महत्त्वपूर्ण कड़ी का काम ये गतिविधियां करती हैं। उदाहरणार्थ बच्चा गणित की पुस्तक के माध्यम से आधे और चौथाई का अंतर सीख सकता है, पर हस्तशिल्प की कक्षा में कागज को नापने आदि में इन गणितीय अवधारणाओं का अंतर स्पष्ट होता है। विभिन्न विषयों में संबंध स्थापित करने के अलावा ये गतिविधियां ध्यान केन्द्रण के तत्वों को भी बढ़ाती हैं, खासकर उन व्यक्तिनिष्ठ तत्वों को जिनमें मिजाज एवं आदतें शामिल हैं।
7. एक और अत्यधिक महत्त्वपूर्ण लाभ यह है कि पदार्थ सामान्यत: वयस्क द्वारा कक्षा में लागू किए गए अनुशासन से भिन्न प्रकार का अनुशासन सिखाते है। गीली मिट्टी के साथ सही तरह का व्यवहार करना ही पड़ेगा, नहीं तो यह तिड़क जाएगी, टेढ़ी-मेढ़ी हो जाएगी। यह बच्चे के लिए एक नए प्रकार का अनुशासन है जो किसी वयस्क द्वारा नहीं बल्कि स्वयं सामग्री द्वारा लगाया गया है। जैसे-जैसे बच्चा हस्तशिल्प की गतिविधियां करता जाता है, वह पदार्थ द्वारा लगाए जाने वाले अनुशासन के प्रति सचेत होता जाता है। परिणामस्वरूप वयस्कों द्वारा लगाए जाने वाले अनुशासन को अधिक समझदारी से ग्रहण करता है।
8. इन सब लाभों के अलावा हमें सीखने के हस्तान्तरण को नहीं भूलना चाहिए। अब इसमें कोई शक नहीं रह गया है कि किसी एक क्षेत्र में समस्या समाधान की गतिविधियां यदि अच्छी तरह सिखाई जाएं तो इनसे बच्चा अन्य क्षेत्रों में समाधान की क्षमता भी प्राप्त करता है।

इस लेख के आरंभ में उल्लेखित दो बिंदुओं, विमर्श और नैतिकता पर किसी आगे आने वाले लेख में विचार करेंगे।

अनुवाद : रोहित धनकर

मूल्यांकन का मूल्यांकन

मूल्यांकन को शीघ्रतिशीघ्र हमारे शिक्षा-तंत्र की खिड़कियों से बाहर फेंक देना चाहिए। मूल्यांकन के हर पहलू को, मूल्यांकन शोध को, कार्यान्वयन को, मूल्यांकनकर्ताओं के प्रशिक्षण तथा कार्यशालाओं को, अधिकाधिक दुष्ट मूल्यांकन विधियों की ईजाद में लगे मूल्यांकन-भक्तों से भरे बड़े-बड़े भवनों को अर्थात् मूल्यांकन की सम्पूर्ण प्रक्रिया को, इसके संपूर्ण साज-समान को, ठीक उसी तरह बाहर फेंक देना चाहिए जैसे उन्नीसवीं सदी के लन्दन में शयनागारों की खिड़कियों से चेम्बरपोट्स (मूत्रपात्र) खाली किए जाते थे।

घनचक्कर की पहेली योजना

शाला-शिक्षण के स्तर में विगत तीस वर्षों से चल रही सतत् गिरावट के कारणों में मूल्यांकन सर्वाधिक शक्तिशाली कारण रहा है। मूल्यांकन अपनी अंक प्रदान करने की प्रक्रिया को अधिकाधिक वस्तुनिष्ठ बनाने की सनक तथा बालकों की कोमल बुद्धि को परम अनावश्यक जानकारी के टुकड़ों से भरने की अनबुझ प्यास के कारण एक भारी भरकम 'घनचक्कर की पहेली योजना' बन कर रह गया है। (प्रश्नों के कुछ उदाहरण हैं : स्वेज नहर किसने बनाई? 19 नवम्बर को सूर्य कहां होता है? उसके उपकरण के बारे में क्या जानते हो?) इन सभी पहेलियों के विजेताओं को भारतीय प्रशासनिक सेवाओं के माध्यम से स्वर्ग का नि:शुल्क प्रवेश-पत्र मिलता है। दूसरे स्थान पर रहने वालों को तकनीकी संस्थानों तथा उच्च श्रेणी के व्यवस्थापकीय पदों के माध्यम से शोधन-स्थानों का प्रवेश-पत्र मिलता है। बाकी लोगों को बिना स्वर्ग या शोधन-स्थान पहुंचे, चलते रहने की अनुमति मिलती है।

लेकिन कैसे कहा जा सकता है कि इस दु:खान्तिका का मुख्य खलनायक मूल्यांकन ही है? मूल्यांकन से तो बालकों की योग्यताओं और उपलब्धियों का पता चलता है! यह तो छात्रों की कार्यक्षमता को सही-सही नापने का पैमाना प्रस्तुत करता है! यह तो एक सशक्त अभिप्रेरण है जो बच्चे को अधिकाधिक अध्ययनशील बनाता है!!! ये मूल्यांकन-विशेषज्ञों के तर्क हैं। मूल्यांकन के इन तथाकथित फायदों की जांचशीघ्र ही की जा सकती है।

पहली बात, मुश्किल से ही कोई परीक्षा बालकों की योग्यताओं व उपलब्धियों का, इन शब्दों के सही अर्थों में ठीक-ठीक चित्र उपस्थित कर पाती है। परीक्षा केवल छात्र की स्मरण-शक्ति की ही जांच करती है, न कि इसकी शैक्षणिक उपलब्धियों की और सृजनात्मकता की। परीक्षा में छात्र की छोटी-छोटी असम्बद्ध सूचनाओं को रटने की शक्ति के अलावा और किसी भी योग्यता की जांच नहीं होती तथा यह असम्बद्ध सूचनाओं का समूह भी विद्यालय सत्र की समाप्ति के तुरन्त बाद दिमाग से साफ हो जाता है। फिर तथ्यों का एक नया समूह रटने के लिए दिया जाता है। साल दर साल यही होता रहता है और अन्त में बहुत ही कम तथ्य दिमाग में रह पाते हैं। इसकी सत्यता की जांच प्रथम वर्ष बी.ए. के किसी छात्र से दसवीं विज्ञान के कुछ प्रश्न पूछकर की जा सकती है।

दूसरी बात, अधिकतर योग्य साक्षात्कारकर्ता इससे सहमत होंगे कि सैकेण्डरी, पी.यू.सी. या बी.ए. पास होना कार्यक्षमता के संकेतक के रूप में बहुत ही कम उपयोगी होता है। इसका कारण भी यही है कि परीक्षा केवल रटने की योग्यता की जांच करती है तथा रटने की योग्यता किसी भी काम को समझदारी से कर सकने की योजनाओं में से एक नहीं है।

तीसरी बात, परीक्षा निकृष्टतम अभिप्रेरणा है, क्योंकि यह शीघ्र ही एक मात्र अभिप्रेरण बन जाती है। विद्यालयों में झांकने मात्र से इसका पता चल जाता है। देखिए अध्यापक व छात्रों की उन विषयों में कितनी रुचि है, जिनकी परीक्षा नहीं होती। उदाहरण के लिए दक्षिण भारतीय विद्यालयों में हिन्दी को ही ले लें।

फिर भी ऐसा नहीं है कि मूल्यांकन पर आक्रमण के यही समस्त कारण हों। मूल्यांकन इनसे भी अधिक गंभीर अपराधों के लिए उत्तरदायी है। इसने शिक्षा तंत्र के हर विभाग को विषाक्त कर दिया है- पाठ्यक्रम को, पाठ्यपुस्तकों को, अध्यापन को, अध्यापकों को और यहां तक कि बालकों को भी।

मूल्यांकन ने पाठ्यक्रम को कैसे विषाक्त कर दिया है। पिछले तीस वर्षों में धीरे-धीरे, पर लगातार, इस बात पर अधिकाधिक बल देकर कि वे सब विद्याएं, जिनकी परीक्षा हो, अधिक से अधिक वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन योग्य होनी चाहिए।

किसी भी सार्थक शिक्षातंत्र में ऐसे बहुत से क्रियाकलाप होते हैं जो वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन के ढांचे में नहीं समाते। ये सब क्रियाकलाप धीरे-धीरे पाठ्यक्रम से निकाल दिए गए हैं क्योंकि उनकी परीक्षा वस्तुनिष्ठ आधार पर बहुत कठिन है। परिणामस्वरूप अब हम एक ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में हैं जहां यह समझा जाता है कि जिस विद्या की परीक्षा न हो सके, उसे पढ़ाना ही नहीं चाहिए।

पाठ्येत्तर क्रियाकलाप

इस प्रकार शैक्षणिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण व आनंदप्रद बहुत से क्रियाकलापों को नवीं व दसवीं कक्षाओं में अनिवार्यतः तथा नीचे की कक्षाओं में साधारणतः पाठ्यक्रम से निकाल दिया जाता है। उदाहरण के लिए कला, हस्तशिल्प, संगीत, विचार-विमर्श, लकड़ी का काम, सर्जनात्मक लेखन, कविता (पाठ्यपुस्तकों में आई कविताओं को छोड़ कर) आदि इन क्रियाकलापों में से कुछ हैं। यदि ये विधाएं किसी प्रकार पाठ्यक्रम में रह भी जाएं तो इनको महत्त्व नहीं मिलता। अधिक से अधिक इनको व्यासंग (हॉबी) माना जाता है। पाठ्यक्रम का अभिन्न व अनिवार्य अंग इनको कभी नहीं माना जाता। यदि शिक्षा का उद्देश्य सम्पूर्ण व सुखी मानवों का निर्माण है, जो विद्यालय छोड़ने के बाद समाज को भी कुछ दे सकें तो ये विद्याएं अति महत्त्वपूर्ण हैं। यह सभी शिक्षा-शास्त्री स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार मूल्यांकन ने पाठ्यपुस्तकों को भी बर्बाद कर दिया है। आज पाठ्यपुस्तक कुछ तथ्यों का संकलन मात्र रह गई है, जिसे बालकों को रटना है। उदाहरण के लिए विज्ञान की पाठ्यपुस्तक के एक पृष्ठ पर मेंढ़क से संबंधित ये तथ्य हो सकते हैं :

मेंढ़क के चार टांगें होती हैं।
उसके एक लम्बी जीभ होती है।
वह छोटे कीड़े-मकौड़ों को पकड़ता है।

सामने के पृष्ठ पर अभ्यास प्रश्न होंगे :

मेंढ़क के .... टांगें होती हैं।
इसकी एक लम्बी ... होती है।
वह छोटे ..... को पकड़ता है।

खुले प्रश्नों की अनुमति ही नहीं है क्योंकि बच्चे अलग-अलग उत्तर दे सकते हैं जिससे अंक प्रदान करना सरल नहीं होगा। जैसा कि ग्रैडगांइड महाशय

(ज़ो बहुत व्यवहारिक व्यक्ति थे) कहते हैं, ''हमें इन लड़कियों को तथ्यों के अलावा कुछ नहीं पढ़ाना चाहिए।'' परिणामस्वरूप लुइसा तथ्यों की शिक्षा प्राप्ति व असफल वैवाहिक जीवन के बाद अपने पिता से कहती है, ''पिता जी, यदि मुझे अपनी कल्पना-शक्ति का कुछ भी अभ्यास करने दिया गया होता तो मैं आज लाखों गुणा ज्यादा बुद्धिमान होती।'' और इतना ही अधिक बुद्धिमान हमारे बच्चे होते।

मूल्यांकन ने अध्यापन को भी बर्बाद कर दिया है। कल्पना करिए कि विश्वविद्यालय का कोई अध्यापक पाठ्यक्रम में आए किसी लेखक के बारे में कुछ प्रासंगिक तथ्य बताने लगा है। विद्यार्थी उससे यही पूछेंगे, ''सर, क्या यह परीक्षा में आएगा?'' और यह अनुभव विश्वविद्यालय के किसी भी अध्यापक को हो सकता है।

इस मूल्यांकनाभिमुख प्रवृत्ति का परिणाम यह है कि बच्चों के माता-पिताओं, छात्रों और अध्यापकों के जीवन का मात्र एक ही लक्ष्य रह गया है मूल्यांकन। यदि किसी भी क्रियाकलाप में मूल्यांकन का यह मसाला न हो तो अध्यापक के लिए यह पढ़ा पाना कठिन होता है, क्योंकि बच्चों की उसमें रुचि नहीं होती और उनके माता-पिता ऐसे अध्यापक से गुस्सा होते हैं। ऐसी स्थिति में एक अध्यापक को विचार मात्र में ही एक चिढ़ा हुआ पिता कहता सुनाई देगा, ''यह अध्यापक कर क्या रहा है? क्यों समय बर्बाद कर रहा है? इसको चाहिए बच्चों का ध्यान अध्ययन में लगावे।'' अध्ययन का अर्थ उसकी भाषा में शिक्षा नहीं है, बल्कि पाठ्यपुस्तकों की रटाई तथा परीक्षा है, इसके अलावा कुछ नहीं। यही कारण है कि अच्छा अध्यापन व बालकों को सर्जनात्मक व जिज्ञासु बुद्धि प्रदान करते हुए शिक्षित करना असम्भव हो गया है।

मूल्यांकन ने छात्रों को बर्बाद कर दिया है। इसलिए ही नहीं कि उपरोक्त कारणों- पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों, अध्यापन व अध्यापकों का उन पर बहुत प्रभाव पड़ता है बल्कि इसलिए भी कि बालकों को भी मूल्यांकन की छूत लग गई है। अब उनके लिए एक ही अभिप्रेरण-शक्ति रह गई है- परीक्षा में अधिक अंक पाना। उनके पास पाठ्यपुस्तकों के अलावा किसी भी क्रियाकलाप के लिए समय नहीं है। जिन क्रियाकलापों का अधिक अंक प्राप्त करने में कोई योगदान न हो, वे नापसंद किए जाते हैं और ठुकरा दिए जाते हैं।

यही कारण है कि हमारे विद्यालय शिक्षण में किसी भी महत्त्वपूर्ण गुणात्मक सुधार की तब तक संभावना नहीं है जब तक कि शिक्षातंत्र के गले में कसता हुआ मूल्यांकन का फंदा काटा न जाए तथा विद्यालयों, पाठ्यपुस्तकों, अध्यापकों व

छात्रों को इस बोझ से मुक्त न कर दिया जाए। जब वे इस बोझ से मुक्त हो जाएंगे तभी शिक्षा के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण क्रियाकलापों में ईमानदारी व निडरता से रुचि ले पाएंगे।

अनुवाद : रोहित धनकर

स्कूली शिक्षा : एक नई दृष्टि

डेविड ऑसबरों से एक साक्षात्कार

रोजलिंड : डेविड, आप ब्रिटिश काउंसिल अधिकारी रहे हैं, बाद में एक मान्य शिक्षक एवं लेखक के रूप में लम्बे समय से भारत में रह रहे हैं, आपको नीलबाग स्कूल शुरू करने के लिए किस चीज ने प्रभावित किया?

डेविड : मुझे लगता है कि यह मेरी भारत की पहली यात्रा ही थी। मैं पहली बार दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान 1943 में रायल एयरफोर्स के तहत भारत आया था। तब मैं बांग्लादेश के चिटगांव इलाके मे पदस्थापित था, जो उन दिनों भारत का ही एक हिस्सा था। उन दिनों मैं अपना अवकाश का कुछ समय चिटगांव से बीस मील दक्षिण में एक छोटे से टापूनुमा गांव में बिताया करता जिसके धान के खेतों के बीच सिर्फ दो परिवार रहते थे, एक हिन्दू और एक मुसलमान। सड़कें नहीं थीं, सिर्फ जल मार्ग ही थे।... मैंने उस गांव का स्कूल देखा तो मुझे महसूस हुआ कि हां, यही वह काम है जो मैं जीवन में करना चाहता हूं, किसी गांव के स्कूल में पढ़ाना।

और फिर, युद्ध के बाद मैं इंग्लैण्ड लौट गया। वहां मैंने डिग्री ली और 1950 में फिर भारत आ गया और सच तो यह है कि शुरुआत मैंने दूसरे छोर से की। मैंने मैसूर में अंग्रेजी के प्रोफेसर के तौर पर पढ़ाना शुरू किया, फिर कुछ वर्षों तक ऋषिवैली में जाकर शिक्षण किया। 1959 में मैंने ब्रिटिश काउंसिल में नौकरी कर ली और 1972 में अपना स्कूल शुरू करने के लिए मैं उससे अलग हो गया। इस सारे समय मैं किसी न किसी रूप में शिक्षण से जुड़ा रहा और यह मेरी खुशकिस्मती रही कि मुझे पूर्व-प्राथमिक से लेकर स्नातकोत्तर तक सभी स्तरों को पढ़ाने का अवसर मिला।

रोजलिंड : आपके ये अनुभव आपके स्कूल में प्रतिबिम्बित हुए?

डेविड : हां, मेरा विचार मूलत: ग्रामीण विद्यालय का था। लेकिन इस पर सभी तरह के प्रभाव देखे जा सकते हैं, इवान इलिच से लेकर ए.एस. नील तक। मैं एक ऐसा स्कूल चाहता था जो मौजूदा स्कूलों से बिल्कुल हटकर हो।

रोजलिंड : कदाचित् इसलिए कि आपके विचार से मौजूदा स्कूल ठीक ढंग से नहीं चल पा रहे थे?

डेविड : हां, एक हद तक मैं यह कह सकता हूं कि वे ठीक ढंग से काम नहीं कर रहे हैं।

रोजलिंड : तो जब आपने नीलबाग शुरू किया, आपको क्या लगता था कि इसकी कौन-सी बात बच्चों को आकर्षित करेगी?

डेविड : सबसे पहले आपको यह बात ध्यान में रखनी होगी, जो नील ने कही थी कि सभी स्कूल जेल होते हैं और बच्चे वहां जाने को विवश होते हैं। तो, मैं एक ऐसा स्कूल चाहता था जहां बच्चों को 'जाएं या न जाएं' जैसे सवालों पर सोचने की जरूरत न पड़े। जहां वे जाने, न जाने, आने, न आने का फैसला अपने मन से कर सकें। इसके लिए विवश न किया जाए। मैं एक ऐसा स्कूल भी चाहता था जिसमें सजा नाम की कोई चीज न हो।

रोजलिंड : यह तो ए.एस. नील जैसी ही बात लगती है?

डेविड : हां। हालांकि बहुत सारे मुद्दों पर मेरी ए.एस. नील से जबरदस्त असहमति भी है। जाहिर है, जहां आप कोई सजा नहीं चाहते, वहां आप कोई नियम भी नहीं रख पाएंगे क्योंकि जैसे ही आप कोई नियम लागू करना चाहेंगे, उन पर अमल कराने के लिए अंतत: आपको किसी न किसी किस्म का दबाव भी डालना होगा और आखिरकार आप कहेंगे कि यदि आप हमारी जीवन शैली में स्वयं को नहीं ढाल सकते तो मुझे अफसोस है, आप हमारे साथ नहीं रह सकते।

इसके बाद मैंने पाया कि सभी स्कूलों का पाठ्यक्रम बहुत दोषपूर्ण है। बच्चे जब अपनी रचनात्मक ऊर्जा के चरम पर होते हैं, बारह-तेरह साल की उस उम्र में, परीक्षा के दबाव में उन्हें रचनात्मकता के उन रास्तों को बंद करना पड़ता है-क्योंकि परीक्षा को बहुत अनिवार्य माना जाता है। और जब मैंने तय किया कि मैं परीक्षा का कोई दबाव नहीं बनाऊंगा। आज स्कूल को चलते दस साल हो गए, हमने कभी कोई परीक्षा नहीं ली।

मेरा मानना है कि बच्चों के स्कूल छोड़ जाने या अनुत्तीर्ण रहने का एक प्रमुख कारण कक्षाओं का विभाजन है। तो हमने कोई स्तर अथवा कक्षाएं नहीं बनाईं। इसका फायदा यह है कि बच्चों को अपनी क्षमता के अनुरूप विकसित होने का अवसर मिलता है। अपनी गति के अनुरूप आगे बढ़ने का।

रोजलिंड : तब तो आपको बच्चों के अनुपात में शिक्षकों की संख्या काफी ज्यादा रखनी पड़ती होगी?

डेविड : मुझे ऐसा नहीं लगता। मैं अकेला पच्चीस छात्रों तक की एक कक्षा को अंग्रेजी पढ़ा सकता हूं। लेकिन निश्चय ही अधिकांश ग्रामीण विद्यालयों की तुलना में हमारा छात्र-शिक्षक अनुपात बहुत कम है।

रोजलिंड : हूं, लेकिन ऐसी हालत में आपके यहां पढ़ाई का स्तर भी तो उनसे बेहतर होना चाहिए कि नहीं?

डेविड : शिक्षक के बारे में मेरी अवधारणा बहुत भिन्न किस्म की है। एक शिक्षक का काम पढ़ाना नहीं बल्कि ऐसा वातावरण तैयार करना है जिसमें प्रत्येक बच्चा अपने स्तर पर चीजों को सीख सके। जैसे लोग मुझसे कहते हैं "देखो दोस्त, अगर तुम राजनीति के बारे में कुछ भी नहीं जानते तो तुम विश्वविद्यालय में राजनीति कैसे पढ़ा सकते हो?" लेकिन मेरा काम किसी को कुछ सिखाना या पढ़ाना नहीं है। सामान्यत: हम एक शिक्षक की कल्पना एक ऐसे व्यक्ति के रूप में करते हैं जो बहुत कुछ जानता है और उसे दूसरों तक पहुंचाने का काम करता है। जैसे कि आप देखते हैं कि राजनीति विज्ञान में डिग्री प्राप्त एक व्यक्ति राजनीति विज्ञान पढ़ाता है या साहित्य में एम.ए. करने वाला व्यक्ति साहित्य पढ़ाता है या इतिहास का डिग्रीधारी शिक्षक इतिहास पढ़ाएगा। मैंने ऐसे किसी विषय में कोई डिग्री प्राप्त नहीं की है। मूल बात है बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में शरीक करना, उन्हें पढ़ाना नहीं।

रोजलिंड : एक बार फिर आपके स्कूल की स्थापना की ओर लौटते हैं। अपने तय किया कि स्कूल में कोई नियम नहीं होगा, किसी को सजा नहीं दी जाएगी और बच्चे अपनी इच्छा से आने या जाने के लिए स्वंतत्र होंगे। ऐसे में बच्चे स्कूल आएं- इसके पीछे कोई बहुत प्रबल निमित्त या प्रेरणा होनी चाहिए। आपके स्कूल में क्या सिखाया जाएगा और उसके लिए क्या तरीके या उपकरण काम में लिए जाएंगे, इस बारे में आपको बहुत सोच-विचार की जरूरत पड़ी होगी?

डेविड : हां, इसके लिए बहुत प्रबल प्रेरणा की जरूरत थी। मैंने इस बारे में बहुत सोचा कि वह क्या है जो बच्चों को सीखने के लिए प्रेरित करता है। मूलत: सबसे जरूरी बात है बच्चों में सीखने की ललक पैदा होना, उसके बाद वे स्वत: सीखने-पढ़ने लगेंगे। हमारे स्कूल में प्रतिस्पर्धा का कोई स्थान नहीं, हम अंक, ग्रेड या प्रमोशन नहीं देते, हमारे यहां सजा का प्रावधान नहीं, बिल्ले या इनाम नहीं दिए जाते। इस सबसे स्पष्ट हो जाता है कि हमारे यहां बच्चों को प्रोत्साहित करने के भी एकदम नए तरीके अपनाए जाते हैं। मुझे लगता है कि जब

बच्चे अपनी कोशिश में सफल होते हैं तो वही उनके लिए सबसे बड़ा प्रोत्साहन होता है और मेरी प्रणाली में, जिसमें कोई स्तर, कक्षा या ग्रेड की व्यवस्था नहीं है, प्रत्येक बच्चा अपनी गति से सफलता प्राप्त कर सकता है। और चूंकि वह सफल होता है, यही बात उसे आगे लगातार सीखते-जानते रहने को प्रेरित करती है।

अब अगर आपके सामने पैंतीस बच्चों का समूह है और एक शिक्षक को उन्हें पढ़ाना है तो उसे एक निश्चित गति बनाए रखनी होगी जो कक्षा के साठ से सत्तर प्रतिशत बच्चों के अनुकूल हो। यह रफ्तार कुछ बच्चों के लिए बहुत तेज हो सकती है तो कुछ कुशाग्र बच्चों को बहुत धीमी भी लग सकती है। ऐसे में दोनों छोर पर जो बालक हैं वे विमुख होने लगते हैं, जैसे कि मंद चलने वाले बच्चे कुछ सीख नहीं पाते। वहीं कुशाग्र बच्चे हताश होने लगते हैं कि शिक्षक उन्हीं बातों को दोहरा रहे हैं जिन्हें वे पहले से जानते हैं। हमारी प्रणाली में एक कुशाग्र बच्चा चाहे तो चार साल की सामग्री एक साल में पढ़ सकता है। हमारे यहां ऐसा ही एक बच्चा है, जिसने अंग्रेजी की चार साल की पुस्तकों को एक साल में ही पढ़ लिया। वहीं कोई दूसरा बच्चा विभिन्न कारणों से किसी चीज को सीखने में कठिनाई अनुभव करता है तो वह एक की बजाय डेढ़ या दो साल में या जितना समय वह चाहे उतना समय लगा कर सीखे। लेकिन धीमी रफ्तार पर सीखने के बावजूद सफलता उसे भी मिलती है। मेरी अवधारणा एक ऐसे स्कूल की है जिसमें सभी को सफलता मिले। इसका यह मतलब नहीं कि कुछ बच्चे ज्यादा कुशाग्र नहीं हो सकते। बेशक, होते हैं।

रोजलिंड : लेकिन, आपको प्रोत्साहन का ऐसा कोई आधार दिखाई नहीं देता कि लोगों को व्यावहारिक रूप में शिक्षा का महत्त्व समझ में आए कि यह चीज हमारे तुरंत फायदे की है- और वे उसके प्रति उत्सुक हो?

डेविड : बिल्कुल नहीं। बच्चों के साथ तो ऐसा बिल्कुल नहीं किया जाना चाहिए। क्योंकि शिक्षा के बारे में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि जब तक आप शिक्षित नहीं हो जाते, आप उसके महत्त्व को जान भी नहीं पाते। किसी ग्रामीण को यह बताने से कोई मतलब नहीं कि शिक्षा बहुत जरूरी है। वह इसका महत्त्व सिर्फ इस तरह से समझेगा कि 'अगर मैं दसवीं तक पढ़ लिख लूं तो मैं किसी सरकारी दफ्तर में चपरासी हो सकता हूं,' लेकिन यह तो एक तकनीकी बात हुई, शिक्षा का अभिप्राय सिर्फ इतना ही तो नहीं। कोई भी अशिक्षित व्यक्ति शिक्षा के वास्तविक महत्त्व को जान नहीं सकता।

रोजलिंड : यानी आप इसे ऐसे काम के रूप में देखते हैं जिसे करने में

लुत्फ आए?

डेविड : बिल्कुल! पहला चरण ही यह है कि बच्चों को आनन्द आए और बच्चों को आनन्द आता है। वे बहुत जिज्ञासु होते है, उन्हें खेल बहुत पसंद आते हैं और वे खेलने सहित विभिन्न कामों में भरपूर आनन्द लेते हैं। जब वे अपनी क्षमताओं को पहचान लेते हैं तो नए-नए कौशल अर्जित करने की कोशिश करने लग जाते हैं।

रोजलिंड : लेकिन मुझे लगता है कि आपको बच्चों से शारीरिक श्रम करवाने के लिए कुछ तो प्रयास करने ही पड़े होंगे? आपका एक तयशुदा टाइम टेबल है? आपने कहीं ऐसा भी तो लिखा है कि उन्होंने अपने कक्षा-कक्षों का निर्माण स्वयं किया?

डेविड : हां, यह ठीक है कि हमारे यहां एक टाइम टेबल है और अपने आप में काफी गैर-लचीला भी है लेकिन बच्चे कक्षा में आने या न आने के लिए स्वतंत्र हैं। हमारे यहां शारीरिक श्रम वैसे नहीं कराया जाता जैसे गांधी जी की अभिकल्पना थी शारीरिक श्रम की। बेशक बच्चों ने कक्षों का निर्माण किया, पर यह भी उनकी शिक्षा का एक सामान्य हिस्सा था।

हमारा पाठ्यक्रम बहुत व्यापक है। उनकी मातृभाषा तेलुगु है, इसके साथ दूसरी भाषा के तौर पर वे अंग्रेजी सीखते हैं। वे एक प्रादेशिक भाषा कन्नड़ सीखते हैं। हिंदी और संस्कृत भी सीखते हैं। इनके साथ-साथ उनके विशद् पाठ्यक्रम में गणित, विज्ञान, पर्यावरण शिक्षा, कला, हस्तशिल्प, मिट्टी का काम व लकड़ी का काम भी शामिल है।

रोजलिंड : पाठ्यक्रम क्या हो, यह आपने कैसे तय किया?

डेविड : अपने विवेकानुसार। सभी पाठ्यक्रम बनाने वालों के विवेक की उपज होते हैं। इसे पाठ्यक्रम बनाने वाले का मनमानापन भी कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए हमारे स्कूल में दर्शन पढ़ाया जाता है, क्योंकि मेरे विचार में बच्चों के लिए दर्शन को जानना बेहद उपयोगी हो सकता है। लेकिन संभव है आप ऐसा न मानते हों और अन्य स्कूल के पाठ्यक्रम में दर्शन को शामिल नहीं किया गया होगा क्योंकि लोगों को वह जरूरी लगता ही नहीं। हम सौन्दर्यशास्त्र भी पढ़ाते हैं, संगीत का रस लेना तथा विमर्श की तकनीकें भी सिखाते हैं। अब ये सारी चीजें मुझे बच्चों लिए अत्यावश्यक दिखाई देती हैं लेकिन आपको यह सब आम पाठ्यक्रमों में नहीं मिलेगा। इसी तरह हम मिट्टी के बर्तन बनाना सिखाते हैं। कभी-कभी लोग हमारा पॉटरी विभाग देख कर कहते हैं, 'बहुत अच्छा है कि आप बच्चों को कुम्हार का काम भी सिखा रहे हैं ताकि वे इससे ही

जीविकोपार्जन कर सकें।' मैं इस तरह का कुछ नहीं कर रहा। मुझे लगता है कि काम के जरिए सीखना बहुत जरूरी है। आपने मूर्तिकार एरिक गिल के बारे में सुना होगा, उन्होंने शिक्षा पर काफी लिखा है। एक बात जो उन्होंने कही वह यह कि हम बच्चों को चित्र के इस्तेमाल में कभी शिक्षित नहीं करते; सदैव विचार, अभ्यास और खेल आदि-आदि; पर चीजों का इस्तेमाल कभी नहीं। मेरे विचार से बच्चों को यह सीखना चाहिए कि पदार्थ कैसे अपना अनुशासन उपयोगकर्ता पर लगाता है। यह उस वस्तु का अपना अनुशासन होता है। जो किसी बड़े के द्वारा बताए जाने वाले अनुशासन से बिल्कुल भिन्न होता है। अगर मैं अंग्रेजी में कोई गलती करता हूं तो तुम मुझे उसके बारे में बता सकती हो और मुझे दुरूस्त कर सकती हो। लेकिन अगर मैं चाक पर काम करते हुए गलती करूंगा तो मिट्टी ही मुझे बता देगी कि 'तुम मुझे ठीक तरह से काम में नहीं ले रहे हो।' अगर मैं किसी लकड़ी पर गलत तरीके से रंदा चलाने लगूंगा तो वह चिकनी होने की बजाय खुरदरी हो जाएगी। इस तरह लकड़ी स्वयं बालक को अपने अनुशासन में ढाल लेगी। यह बहुत अद्भुत चीज है इसके लिए किसी आरोपित अनुशासन की जरूरत ही नहीं है क्योंकि प्रत्येक वस्तु की अपनी प्रकृति होती है, अपना अनुशासन होता है।

रोजलिंड : आपके विद्यार्थी जब इस स्कूल से निकलते हैं तो क्या उनमें मुख्यधारा में शामिल होने की महत्त्वाकांक्षा रहती है ?

डेविड : हालांकि अभी तक पूरी तरह हमारे स्कूल से तैयार होकर कोई बच्चा नहीं निकला है। हमारे पास एक लड़का आया था जिसने हाल ही बी.ए. किया है। वह गांव के उन लोगों में से था जो पढ़ाई छोड़ देते हैं क्योंकि वह पी.यू.सी. की परीक्षा में सफल नहीं हो पाया था। तब हमने उससे कहा कि ठीक है। हम इस परीक्षा को उतीर्ण करने में तुम्हारी मदद करेंगे।

हमारे यहां एक लड़का है जो प्रशासनिक सेवा में जाना चाहता है। हम हर सप्ताह एक बातचीत का दौर रखते हैं, इसमें बच्चों से उनकी भविष्य की योजनाओं के बारे में पूछते हैं, उनमें से अधिकांश ने कुछ तय नहीं किया है। मुझे अक्सर इस बारे में आक्रामक सवालों का सामना करना पड़ता है कि हम बच्चों को बहुत ऊंचे बौद्धिक स्तर की शिक्षा दे रहे हैं और उनकी अंग्रेजी बहुत अच्छी है- मेरे यहां बारह-तेरह साल के बच्चे शेक्सपीयर का सातवां नाटक पढ़ रहे हैं। यह बहुत ऊंचा स्तर है, द्विभाषी स्कूल के लिहाज से, यह कोई अंग्रेजी माध्यम स्कूल तो है नहीं। बच्चे शेक्सपीयर के दीवाने हैं, उन्हें यह संसार की बहुत महान कृति लगती है, इन दिनों हम ओथेलो पढ़ रहे हैं... लोग मेरी आलोचना करते हैं, और कहते

हैं कि 'तुम बच्चों को गांव से दूर कर रहे हो।'(और इस तरह की टिप्पणी करने वाले हमेशा शहरी लोग ही होते हैं)। खैर, मैं कहता हूं कि मैं लोगों के साथ छलकपट के लिए तो यहां नहीं हूं। मेरे यहां होने का एकमात्र उद्देश्य उनकी सामर्थ्य के अनुसार उन्हें बेहतरीन शिक्षा दे पाना है कि उनकी तमाम ऊर्जा तथा संभावनाओं को विकसित होने का मौका मिले- वे सोच सकें, महसूस कर सकें, स्नेहपूर्ण संबंध बना सकें, चीजों को समझ सकें, कह सकें, स्वयं की अभिव्यक्ति कर सकें, वस्तुओं का उपयोग करना जान सकें, पर्यावरण को समझ सकें, शोषण के मायने समझ सकें तथा और भी बहुत सारी चीजें हैं ज़िन्हे वे जान-समझ सकें। इसके बाद वे क्या करते हैं- उसमें मेरा कोई दखल नहीं। मैं उनसे नहीं कहूंगा कि उन्हें गांव में रहकर दूसरों की मदद करनी चाहिए। अगर वे ऐसा करना चाहते हैं, तो करें। अगर वे किसी बड़े शहर में जाना और चित्रकार बनना चाहते हैं, तो वह भी ठीक है। मैं उन्हें यह बताने के लिए नहीं हूं कि वे क्या करें।

रोजलिंड : क्या ग्रामीण बच्चों के लिए एक अच्छा पाठ्यक्रम तैयार करने के पीछे आपका उद्देश्य यह है कि उन्हें अच्छा रोजगार मिल सके ?

डेविड : मेरे लिए ग्रामीण पाठ्यक्रम का कोई मतलब नहीं, यह सब बकवास है जिसे उन पांच प्रतिशत शहरी संभ्रांत लोगों ने फैलाया है जो देश की सत्ता पर काबिज हैं, जिनका शिक्षा प्रणाली पर नियन्त्रण है और मैं यहां तक भी कहूंगा कि ये लोग ही ग्रामीण आबादी को शिक्षा से महरूम भी रखना चाहते हैं। तीन महीने पहले दिल्ली से एक अध्ययन प्रकाशित किया गया था जिसके अनुसार देशभर में 65 प्रतिशत बच्चे पांचवी कक्षा के बाद पढ़ाई छोड़ देते हैं।

मुझे लगता है कि यह संख्या लगातार बढ़ती ही जाएगी। आप देखेंगे कि शिक्षा का पाठ्यक्रम ही इन पांच प्रतिशत शहरी संभ्रांत वर्ग को ध्यान में रख कर तैयार नहीं किया जाता, बल्कि सारे संसाधन भी इसी वर्ग को समर्पित हैं। हमारे ग्रामीण विद्यालयों में दो सौ बच्चों पर एक शिक्षक की नियुक्ति होती है। कितना हास्यास्पद है कि हमारे स्थानीय हाई स्कूल का सैकेण्डरी की परीक्षा का परिणाम मात्र चार प्रतिशत रहता है। आप कल्पना भी नहीं कर सकते! जो बच्चे दस साल तक प्रतिदिन तीन मील चलकर स्कूल आते रहे हैं, और अंत में असफल हो जाते हैं।

रोजलिंड : लेकिन आप हर गांव में एक डेविड ऑसबरॉ के होने की कल्पना तो कर नहीं सकते। या कर सकते हैं? यहां तक कि जिस तरह की व्यवस्था आपने कायम की है उसको जारी रखने के लिए भी आपको असाधारण रूप से योग्य लोगों की जरूरत पड़ेगी।

डेविड : इस स्कूल के समानान्तर हम बच्चों के लिए चार और स्कूल संचालित कर रहे हैं- वहीं मैं एक छोटा शिक्षक प्रशिक्षण स्कूल भी संचालित कर रहा हूं। और जब कभी भी मुझे ऐसे प्रतिबद्ध युवा लोग मिलते हैं जो इस तरह का स्कूल शुरू करने के प्रति उत्सुकता रखते हों तो मैं उनके बी.ए. अथवा एम.ए. कर लेने पर, (कम से कम बी.ए. की अपेक्षा तो मैं भी रखता ही हूं।), उन्हें दो साल का प्रशिक्षण देता हूं जिसका उद्देश्य यह होता है कि वे कम से कम दसवीं तक के सभी विषय पढ़ाने की स्थिति में पहुंच जाएं। तब वे अपना स्कूल शुरू करते हैं। फिलहाल हमारे ऐसे चार स्कूल चल रहे हैं, सभी ग्रामीण क्षेत्रों में हैं और प्रत्येक में पन्द्रह से पच्चीस तक बच्चे पढ़ रहे हैं। ऐसे प्रशिक्षित लोगों द्वारा चलाए जाने वाले स्कूल भी अच्छा काम कर रहे हैं। इसलिए मुझे लगता है कि यह सब सीखा और सिखाया जा सकता है।

रोजलिंड : बेशक। मोबाइल क्रेचेज द्वारा आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रमों को देखने का कुछ अनुभव मुझे है। वहां कम पढ़े-लिखे लोगों का चयन कर लिया जाता है और फिर उनका सघन प्रशिक्षण किया जाता है। फिर लगातार निगरानी रखी जाती है। जाहिर है इस सबमें बहुत भारी मदद करनी पड़ती है- पर्यवेक्षक व प्रशिक्षक अनुपात भी इस सब में बहुत अधिक होता है।

डेविड : यह इसलिए हो रहा है कि वहां ऐसे लोगों को लिया जा रहा है जिन्हें अशिक्षित कहा जा सकता है क्योंकि उन्हें अपने कार्यक्षेत्र के आधारभूत दर्शन की भी जानकारी नहीं होती। इसलिए ही उन पर लगातार नजर रखने की भी जरूरत होती है। वे सिर्फ तकनीक को सीख लेते हैं और फिर चाहे वह उपयुक्त हो या नहीं, वे इसमें फर्क करने की कोशिश भी नहीं करते और उसे काम में लेते चले जाते हैं, वे उसके मूल विचार तक तो पहुंच ही नहीं पाते, बस उसकी तकनीक में ही उलझे रहते हैं। यह भी इसलिए कि उन्हें सिर्फ तकनीक मिली है, दर्शन नहीं।

रोजलिंड : तो फिर यह मानिए, आपको इस तरह का प्रशिक्षण देने के लिए एक विशेष किस्म की प्रतिभा से सम्पन्न लोगों की जरूरत रहती है?

डेविड : बिल्कुल ठीक। इसलिए न्यूनतम शिक्षा जरूरी है— कम से कम बी.ए. (ऐसा नहीं है कि बी.ए. कर लेने वालों को शिक्षित कहा ही जा सकता है?) तब हम उन्हें ऐसा वातावरण उपलब्ध कराते हैं जिसमें वे यह जान सकें कि कैसे पढ़ाया जाए? हमारा लक्ष्य उन्हें यह सिखाना है कि कैसे सिखाया जाए? इसके लिए उनके सामने एक स्कूल होना चाहिए जहां वे स्वयं भी पढ़ा सकें।

बिना स्कूल के शिक्षक प्रशिक्षण स्कूल का विचार एकदम हास्यास्पद है।

यह कुछ उसी तरह की बात होगी जैसे एक बच्चे को बिना चाक के बर्तन बनाना सिखाने की कोशिश की जाए। लेकिन हमारे देश के सभी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान बिना स्कूल के ही चलते हैं, ऐसे प्रशिक्षण संस्थानों की सफलता हमेशा संदिग्ध रहती है। अगर आप शिक्षकों को प्रशिक्षण दे रहे हैं तो आपको बच्चों की जरूरत हो होगी ही। तो एक स्कूल सचमुच चलता है जहां मेरे प्रशिशु शिक्षक लगभग 800 घंटे पढ़ाने का अनुभव प्राप्त करते है। वहां वास्तव में आपको कुछ परिणाम मिलते हैं। कम से कम वे कक्षा को नियंत्रण में रखना सीख जाते हैं और बच्चों में रुचि पैदा कर सकते हैं। इसके अलावा वे कार्यशाला में जाते हैं। पढ़ने के लिए उनके पास एक बेहतर पुस्तकालय है। यहां कार्यशाला भी बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि अधिकांश भारतीय युवाओं को हस्त-कौशल के कार्यों का अभ्यास नहीं होता, वे बढ़ईगिरी के बारे में न्यूनतम जानकारी भी नहीं रखते कि कैसे लकड़ी को काटा या जोड़ा जाता है, इसी तरह अन्य कामों के बारे में भी...। अधिकांश लड़कियों को तो हाथ में औजार उठाने का भी अनुभव नहीं होता। वे दृश्य सामग्री बखूबी बना लेती हैं और खूब पढ़ती हैं। प्रत्येक सप्ताह मैं उन्हें चार काम सौंपता हूं जिसकी कि उन्होंने पर्याप्त सैद्धांतिक जानकारी ले ली होती है। सप्ताह में दो सेमिनार होते हैं जिनमें हम शिक्षा के दर्शन पर चर्चा करते हैं या पढ़ने के दौरान जो मुश्किलें उन्हें आती हैं, उनके बारे में चर्चा करते हैं। सामान्य मनोविज्ञान, शिक्षा का मनोविज्ञान तथा शिक्षा का दर्शन भी उनके पाठ्यक्रम का हिस्सा हैं।

रोजलिंड : मुझे लगता है, कुल मिलाकर आपकी दृष्टि किसी शिक्षा नियोजक की दृष्टि नहीं है क्योंकि वे समाज को किसकी जरूरत समझते हैं, इसके विश्लेषण से शुरू करते हैं और फिर शिक्षा तंत्र को उन जरूरतों के मुताबिक ढालने का प्रयत्न करते हैं जिससे उन्हें पूरा किया जा सके। जैसे अगर आपको ज्यादा क्लर्कों की जरूरत है तो वे ज्यादा क्लर्क तैयार करेंगे, इंजीनियरों की तो इंजीनियर.... और सिलसिला इसी तरह चलता रहता है।

डेविड : सही कहा। हम पाते हैं कि शिक्षा नियोजकों की कोई कमी नहीं है। बल्कि भारत में कितने ही सालों से शिक्षित लोग क्लर्क बन रहे हैं और आज भी शिक्षा के नीति-निर्माता इसी तरह लोगों को संचालित कर रहे हैं। अगर आपको ज्यादा वैज्ञानिक चाहिए, आप ज्यादा पैसा दीजिए और देखिए कितने ही लोग वैज्ञानिक बनने की इच्छा रखने लगेंगे।

रोजलिंड : लेकिन क्या लोक शिक्षा का विचार ही लोगों को बरगलाने का नहीं दिखता?

डेविड : आज के समय हम 95 प्रतिशत आबादी के साथ यही छल कर रहे हैं। इसका अहम् कारण तो यही है कि हमारा पाठ्क्रम पांच प्रतिशत संभ्रांत वर्ग को ध्यान में रखकर तैयार किया जाता है, उनके बच्चों को फायदा पहुंचाने के लिए। इसकी सारी योजना ही उन लोगों को ध्यान में रखकर बनाई गई है जो विश्वविद्यालय तक जाते हैं। आप किसी साधारण स्कूल का विज्ञान का पाठ्यक्रम उठाकर देखिए, यह उन्हीं अपेक्षाओं को ध्यान में रखकर तैयार किया जाता है जो विश्वविद्यालय जाने वाले छात्र से की जाती हैं। किसी औसत ग्रामीण शिक्षक के लिए उसे पढ़ा पाना बहुत मुश्किल रहता है, और यही स्थिति ग्रामीण बच्चों की भी है। अंततः वे पढ़ाई बीच में ही छोड़ जाते हैं, जो कि बहुत सुविधाजनक भी है, क्योंकि हम नहीं चाहते कि इसी व्यवस्था में वे लगातार हमारे साथ-साथ चल सकें।

रोजलिंड : लोक शिक्षा की आप ऐसी परिकल्पना कैसे कर सकते हैं कि पढ़ाई बीच में छोड़ने वाले ऐसा न कर पाएं। आप अपने ही स्कूल को लें। इसे विशेष प्रतिभा-संपन्न लोग संचालित करते हैं। ऐसा तो लगता नहीं कि जिस बड़े पैमाने पर इसकी जरूरत है, उस पर यह प्रणाली व्यावहारिक साबित हो पाएगी।

डेविड : नहीं, हमारा स्कूल व्यावहारिक है। मैंने हाल ही अपने एक मित्र की पत्रिका के लिए एक लेख लिखा है जिसमें इस बात को बहुत साफ-साफ रेखांकित किया गया है कि जब तक शिक्षा नियोजक इन सारी समस्याओं पर ठीक ढंग से सोचने नहीं लगेंगे तब तक कुछ नहीं किया जा सकता। यहां एक तरह का दोहरा सोच देखने में आता है। जो लोग शीर्ष पर बैठे हैं वे सोचते हैं कि बहुत कुछ हो रहा है, पर वास्तव में वह हो नहीं रहा। वे सोचते हैं कि पाठ्यक्रम बहुत अच्छा है पर उसे ठीक से व्यवहार में नहीं लाया जा रहा।

अगर आप हमारे स्थानीय कालेज में जाएंगे, जो 15 मील की दूरी पर है, आप देखेंगे कि कुछ लोगों ने वैकल्पिक विषय अंग्रेजी लिया है। उनके पाठ्यक्रम में कुछ पुस्तकें हैं, मान लीजिए कि 'रिचर्ड-थर्ड', और 'द टेल आफ टू सिटीज' हैं। कोई भी विद्यार्थी इन पुस्तकों को नहीं पढ़ेगा। पढ़ना तो दूर वे उन्हें खरीद कर भी नहीं लाएंगे। वे इन पुस्तकों के बारे में कुछ निबन्ध याद कर लेंगे और परीक्षा में वही लिख आएंगे। अब जो लोग पाठ्यक्रम बनाते हैं, परीक्षा लेते हैं और जो पढ़ाते हैं, वे सब खुश हैं कि छात्र साहित्य पढ़ रहे हैं जबकि वास्तव में ऐसा कुछ हो ही नहीं पा रहा। (हंसते हैं)

रोजलिंड : आप की राय में शिक्षा नियोजकों को क्या करना चाहिए?

डेविड : जाहिर तौर पर बहुत सारी चीजें हैं जो की ही जानी चाहिएं।

मिसाल के तौर पर, बहुत सारे लोग दसवीं की परीक्षा में अनुत्तीर्ण रहते हैं। अब इस स्थिति से बचने का एक तरीका तो यह हो सकता है कि एक ऐसी नीति निर्धारित की जाए जिसके तहत विद्यार्थी विभिन्न स्तर पर स्वेच्छा से कितने ही ज्यादा या कम विषय लेने के लिए स्वतंत्र हों जैसे कि आप चाहें तो प्रारंभिक गणित लें और चाहे तो उन्नत गणित। इन विषयों में ग्रेड दिए जा सकते हैं और एक बच्चा जब विद्यालय स्तर की शिक्षा पूरी करे, उसके बाद चाहे तो वह तीन विषय ले या पांच अथवा दो। इसका अभिप्राय यह हुआ कि यदि कोई छात्र विश्वविद्यालय स्तर पर भौतिकी, रसायन शास्त्र और गणित विषय पढ़ना चाहे तो वह सैकेण्डरी स्तर पर उन्नत गणित, भौतिकी और रसायन विषय ले सकता है। अगर किसी व्यक्ति की ऐसी कोई महत्त्वाकांक्षा न हो और शायद बहुत ज्यादा प्रभावशाली भी न हो, तो वह प्रारंभिक अंग्रेजी, प्रारंभिक तेलुगु, प्रारंभिक गणित और प्रारंभिक पर्यावरण शिक्षा जैसे विषय चुन सकता है। ऐसे में उसे चार सी ग्रेड मिल सकते हैं।

अब यदि सरकार को चपरासी की जरूरत है तो उसकी वांछित योग्यता चार सी ग्रेड हो सकती है, किसी अन्य काम के लिए चार बी अथवा युनिवर्सिटी को किसी कार्य के लिए तीन या पांच या दस ए ग्रेड वालों की जरूरत हो सकती है। इसका अर्थ हुआ कि सब पास होंगे, लेकिन अलग-अलग स्तर पर। ऐसे में किसी को नियुक्ति देते समय आपको यह नहीं पूछना होगा कि क्या 'तुमने दसवीं की परीक्षा उत्तीर्ण की है? बल्कि आप पूछेंगे कि तुमने कौन सा ग्रेड पाया है।' और प्रत्याशी बताएगा कि 'मैं लिख और पढ़ सकता हूं और मुझे तेलुगु तथा गणित में बी ग्रेड मिले हैं', और आपका जवाब होगा 'बहुत अच्छा। अब तुम हमारे संस्थान में एक क्लर्क के तौर पर काम कर सकते हो।' अभी सरकार चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के लिए विज्ञापन निकालती है कि वह दसवीं कक्षा उत्तीर्ण हो क्योंकि आपको लिख-पढ़ सके, ऐसा व्यक्ति चाहिए। अब आपको पढ़ने की योग्यता रखने वाले लोग मिल जाएंगे। लेकिन ईश्वर के लिए आप उससे विज्ञान जानने की अपेक्षा तो मत रखिएगा।

मेरी पौत्री हैस्टिंग्स तकनीकी कालेज में जाना चाहती है और इसके लिए वांछित योग्यता 4 सी ग्रेड है, अब आप देखिए चार सी का मतलब हुआ- चार विषयों में सफलता, किन्हीं भी चार विषयों में। अब यदि वह विश्वविद्यालय में जाना चाहे तो उससे अधिक अहर्ताओं की मांग होती और वह भी आवश्यकतानुसार विशेष विषयों में। लेकिन हमारे यहां प्रत्येक बच्चे को दसवीं के सभी विषयों में एक साथ उत्तीर्ण होना जरूरी है। और यह सभी विषय बहुत ऊंचे स्तर के हैं

क्योंकि इनकी रूपरेखा पीयूसी स्तर के लिए वांछित योग्यता को ध्यान में रख कर तैयार की गई है। पीयूसी का अपना स्तर इसलिए ऊंचा है क्योंकि वह विश्वविद्यालय स्तर को ध्यान में रखकर चलता है। यही कारण है कि बहुत सारे बच्चे फेल हो जाते हैं।

रोजलिंड : मुझे कुछ ऐसी जानकारी है कि आपने गांव में अपने स्कूल के अलावा एक प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र भी चलाया है।

डेविड : नहीं, इस तरह का तो कुछ नहीं है। एक समय हमने ऐसी कोशिश की थी कि कुछ बच्चों के अभिभावक भी शिक्षा ग्रहण करने के लिए आएं। लेकिन अनेक कारणों से यह संभव नहीं हो पाया। बहुत सारे अभिभावकों ने इसे छोड़ दिया क्योंकि इनके काम के साथ उन्हें यह बड़ा बेमेल लगता था, हमारे लिए भी यह विकट स्थिति थी कि कैसे एक ऐसा उपयुक्त समय निर्धारित करें, जब वे अन्य सारे काम छोड़ कर यहां आएं। अंततः हमने यह इरादा ही छोड़ दिया। लेकिन यह तो एक छोटी सी शुरुआत मात्र थी, प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र जैसी बात इसमें नहीं रही।

प्रौढ़ शिक्षा के बारे में मैं बहुत आशान्वित नहीं हूं, प्रौढ़ शिक्षा से जुड़े बहुत से लोगों से मेरी अक्सर मुलाकात होती है और मैं उनसे पूछा करता हूं कि वे क्या और क्यों कर रहे हैं और इस काम के पीछे का विचार क्या है? मुझे मुश्किल से ही कोई ठीक-ठाक जवाब मिल पाता है, वे कहेंगे कि 'हम गांवों में जाकर प्रौढ़ लोगों को पढ़ना सिखाते हैं।' 'क्यों ?' 'क्योंकि पढ़ना उनके लिए अच्छा है।'

रोजलिंड : संभवतः उन्हें लगता हो कि इससे उन्हें अपने हालात पर पकड़ बनाने में थोड़ी और सहायता मिल जाएगी। गॉलब्रेथ का यही तो मानना है।

डेविड : मेरे विचार में सिर्फ पढ़ने की क्षमता अर्जित कर लेने का कोई महत्त्व नहीं है, महत्त्वपूर्ण है शिक्षित होना। प्रौढ़ शिक्षा का महत्त्व तभी है। शिक्षा की क्या दशा है, इस लिहाज से देखें तो यह विकट समस्या है- यानि कौन, किसे, कहां और कैसे पढ़ाने जाता है, तुम यह सब जानती-समझती हो। शिक्षा एक लम्बे समय तक चलने वाला काम है, खासतौर से प्रौढ़, तिस पर भी ग्रामीणों के लिए।

रोजलिंड : दिल्ली में एक खुला विद्यालय शुरू किया गया है। इसे नाम दिया गया है- बीच में स्कूल छोड़ गए लोगों के लिए।

डेविड : मुझे इस बारे में जानकारी नहीं है। लेकिन मैं बड़ी उम्र के लोगों के बारे में सोच रहा हूं। यह एक बात है। दूसरी बात है उन्हें शिक्षित किया जाएगा तो उसमें साक्षरता भी निहित होगी। ऐसे में मुझसे यह पूछा जा सकता है कि उन्हें

क्या पढ़ना चाहिए? जनसंचार के सर्वाधिक प्रमुख दो माध्यम हैं- अखबार और रेडियो। तब हम फिर उसी संभ्रांतता के पुराने चक्कर में फंस जाते हैं, क्योंकि एक औसत ग्रामीण व्यक्ति रेडियो पर समाचार सुनकर भी समझ नहीं सकता। पढ़ लेता तो भी नहीं समझ पाता। वह अखबार को भी नहीं समझ सकता। अगर वे कन्नड़, तेलुगु या हिन्दी में भी समाचार सुनें तो वे समझ नहीं पाएंगे। हमारे देश में कितने रेडियो होंगे, वे सभी फिल्मी गाने सुनते हैं, वे समाचार सुनते ही नहीं क्योंकि वे उन्हें समझ नहीं सकते। यही स्थिति समाचार पत्रों की है। अगर मैं तेलुगु का एक समाचार भी पढ़कर सुनाऊं तो मेरी बावर्चिन उसका एक शब्द भी नहीं समझ सकती।

रोजलिंड : क्या आपको लगता है कि आपके बच्चे अपने आस-पास के माहौल के प्रति ज्यादा जागरूक हैं- और वे इसमें परिवर्तन लाने के लिए अपनी भूमिका के बारे में सोच सकते हैं?

डेविड : बेशक। क्योंकि वे शोषणकारी व्यवस्था के बारे में ज्यादा से ज्यादा जान रहे हैं। इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है कि सरकार आवास निर्माण करने के लिए कुछ ऋण देती है। लेकिन कैसे ग्रामीणों को उस ऋण का 20 प्रतिशत तक हिस्सा उन लोगों को सौंप देना पड़ता है जो इन कागजात पर दस्तखत करते हैं। एक हजार रुपए के एक ऋण में 200 रुपए तक यूं ही निकल जाते हैं। हम जानते हैं कि ऐसी बातें कितनी आम हो गई हैं लेकिन बच्चे इनके बारे में जागरूक हो रहे हैं। पुरानी पीढ़ी के ग्रामीणों के सोचने-समझने पर धर्म बहुत हावी रहता था, नए लोग इसके असर से मुक्त हो रहे हैं।

रोजलिंड : इन मामलों में क्या बच्चों तथा अभिभावकों के बीच परेशानियां भी पैदा हुई हैं?

डेविड : वो तो होनी ही हैं। जैसे ही आप एक बच्चे को शिक्षित करना शुरू करते हैं, वह गांव के माहौल से तथा अपने उन अभिभावकों से भी दूर होने लगता है जिनके लिए गांव ही पूरी दुनिया है। वहीं एक बच्चे का संसार अतीत में मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा तक तो वर्तमान में अमरीका, ग्रीनलैण्ड और तमाम दुनिया तक विस्तार पाने लगता है। उसकी दुनिया उसके अभिभावकों के परिमंडल से बहुत अलग हो जाती है। चूंकि बच्चे धर्म, लिंग, शोषण, राजनीति तथा तमाम चीजों पर (स्कूल में) बातचीत करने लगते हैं तो वे गांव में प्रचलित अनेक धारणाओं तथा धार्मिक मान्यताओं आदि पर संदेह करने लगते हैं। इसलिए बच्चों और उनके अभिभावकों के बीच विवाद की स्थितियां उत्पन्न होने लगती है।

रोजलिंड : क्या उनमें से किसी ने बच्चों को विद्यालय आने से भी रोका

है?

डेविड : नहीं, अब तक तो किसी ने नहीं। और जितने ज्यादा समय वे अपने बच्चों को मेरे साथ रहने देंगे, उनके लिए बच्चों को कुछ भी करने से रोकना उतना ही अधिक मुश्किल होता चला जाएगा। लड़कियां विवाह को टालने में सफलता पा रही हैं। यहां कुछ अठारह-उन्नीस साल की लड़कियां हैं जिनकी संभवत: तीन साल पहले ही शादी हो गई होती लेकिन उन्होंने स्नातक होना तय कर रखा है। उन्होंने अपने लिए इतनी सफलता तो हासिल कर ली है... बहुत सारे परिवर्तन आ रहे हैं। किस तरह के परिवर्तन आ रहे हैं, इस बारे में एक उदाहरण देख सकती हो कि जब मैंने स्कूल शुरू किया था, सभी अभिभावक प्रतिदिन अपने बच्चों को पीटा करते थे, अब सिर्फ एक ऐसा पिता है जो बच्चों को पीटता है लेकिन वह भी सिर्फ तब जब वह बहुत नशे में होता है। यह परिवर्तन का ही एक प्रमाण है। इस बारे में राय अलग-अलग हो सकती है कि यह ठीक है अथवा नहीं लेकिन परिवर्तन तो हो रहे हैं। किसी औसत पंद्रह साला लड़के की तुलना में परिवार में इन बच्चों की बात पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है। अभिभावक उनसे समझदारीपूर्ण सलाह की अपेक्षा रखने लगे हैं और लड़के कोशिश करते हैं कि उनके माता-पिता बचत कर सकें, शराब कम पीएं, वे जमीन की व गांव की समस्याओं पर ध्यान दें, आदि।

रोजलिंड : शिक्षा के बारे में एक बात यह भी कही जा रही है कि जब तक इसके साथ भौतिक समृद्धि की उम्मीद जुड़ी न हो, लोग स्कूल जाना नहीं चाहते। क्या आपको अपने बच्चों के संदर्भ में यह सही लगता है?

डेविड : यह मैं मानता हूं कि कुछ मौके ऐसे आए जब मुझे भी कुछ अभिभावकों को, जबकि वे अपने बच्चों को बकरियां चराने भेजना चाहते थे, इस तरह के प्रलोभन देने पड़े कि यदि आपका बच्चा स्कूल जाएगा तो उसे अच्छी नौकरी मिल पाएगी और तब आपको इतनी मेहनत करने की जरूरत नहीं रहेगी। इस तरह के कुछ छोटे-मोटे प्रलोभन तो मुझे भी देने पड़े, मैं मानता हूं। मुझे लगता है कि चूंकि वे स्वयं अशिक्षित हैं, उन्हें लगता है कि शिक्षा मात्र एक बेहतर जीवन स्तर प्राप्त करने का माध्यम भर हो सकती है।

रोजलिंड : लेकिन क्या उन्हें एक बेहतर जीवन की संभावना दिखने लगी है? क्या बच्चे इस तरह से सोचने भी लगे हैं?

डेविड : बच्चों को संभावना दिखती है। मेरा ख्याल है, तुम्हारा सवाल अभिभावकों के बारे में था। यह बात तो उनकी तमाम गतिविधियों में झलकने लगी है। कला की किसी भी विधा को ले लो, उसके बारे में उनके अभिभावकों

ने कभी सुना भी नहीं होगा, या शेक्सपीयर, या लकड़ी अथवा मिट्टी के साथ उनका काम करना, नाटक अथवा विभिन्न विचारों पर चर्चा करना, नए-नए बौद्धिक अनुभव प्राप्त करना। मुझे लगता है कि यह सब उन्हें पर्याप्त रोमांचक लगता है।

रोजलिंड : आप शुरुआत से ही भाषाओं को जानने और पढ़ने पर बहुत जोर देते रहे हैं।

डेविड : हां, मेरे विचार में संवाद शिक्षा का बहुत महत्त्वपूर्ण अंग है। एक बच्चे को आप जब पढ़ना सिखा देते हैं, चीजों को कैसे जानना चाहिए यह सिखा देते हैं तो आपका काम पूरा हो जाता है। अब तीसरा काम बचा रहता है उसे अधिक से अधिक जानने के लिए उत्साहित करना। असल चीज यही है, कोई भी वयस्क यदि पढ़ना जानता है, तथा और अधिक पढ़ने-सीखने-जानने की ललक उसमें है तो वह जो चाहे सीख सकता है।

रोजलिंड : क्या इसीलिए आप उन्हें अंग्रेजी सिखाते हैं?

डेविड : हां, कुछ हद तक। ज्यादातर मातृभाषा माध्यम वाले स्कूल अंग्रेजी पढ़ाते हैं लेकिन बच्चे कुछ खास सीख नहीं पाते क्योंकि शायद सप्ताह में अंग्रेजी की सिर्फ एक कक्षा होती है। अंग्रेजी में भूगोल, इतिहास, जीव विज्ञान, इलेक्ट्रॉनिक्स या किसी भी विषय की सैकड़ों पुस्तकें मिल जाएंगी लेकिन तेलुगु या कन्नड़ में वे पुस्तकें उपलब्ध नहीं हो सकतीं। अत: जो बच्चा आसानी से अंग्रेजी पढ़ नहीं सकता वह, कम से कम वह मेरे विचार से तो, बहुत व्यापक शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता। क्योंकि पठन सामग्री उपलब्ध नहीं है, इसलिए मुझे लगा कि उन्हें अंग्रेजी जाननी ही चाहिए।

दूसरी तरफ अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में किसी भारतीय भाषा में बच्चों की सामर्थ्य विकसित नहीं की जाती, इसलिए ये बच्चे भारतीय संस्कृति की मुख्य धारा से कट जाते हैं। लेकिन वे पाश्चात्य संस्कृति को भी अपना नहीं पाते और वे हास्यास्पद किस्म की संस्कृति (ईनिड ब्लाइटन के उपन्यासों, पॉप संगीत आदि का प्रति रूप) में ढलते चले जाने के सिवा कुछ नहीं कर पाते।

संस्कृतियों के आदान-प्रदान में भाषा की बड़ी जबरदस्त भूमिका होती है। जब तक बच्चे भारतीय भाषा को नहीं सीखेंगे तब तक वे भारतीय संस्कृति को समझ भी नहीं सकते।

रोजलिंड : अंग्रेजी की आपकी अपनी पुस्तकें भी क्या आपको एक खास सांचे-ढांचे जैसी नहीं दिखतीं?

डेविड : इनके लिए बाजार को भी ध्यान में रखना पड़ता है, वर्ना न कोई

उन्हें पढ़ेगा न स्कूलों में लागू की जाएंगी, और अगर किसी पुस्तक को कोई स्कूल लागू नहीं करता तो प्रकाशक उसे बाजार से निकाल बाहर कर देते हैं। मेरी पुस्तकें भी एक तरह समझौता तो हैं ही। आप वैसी पुस्तक नहीं लिख सकते, जैसी आप लिखना चाहते हैं क्योंकि ऐसे उसे कोई खरीदेगा नहीं। एक बार मैंने अपने इच्छित तरीके से पुस्तकें लिखीं : विज्ञान की पुस्तकें, लेकिन उनकी बाजार में विशेष मांग नहीं है। मुझे लगता है, इसका कारण यह है कि वे विज्ञान की सामान्य पुस्तकों से बहुत भिन्न हैं।

रोजलिंड : कैसे?

डेविड : जैसे कि उनमें कई प्रश्न खुले छोड़ दिए गए थे। आप जानते हैं कि साधारणतः विज्ञान की पुस्तकों में एक तरफ मेंढ़क का चित्र बना होगा और दूसरी तरफ बताया गया होगा कि मेंढ़क के चार टांगें होती हैं, एक जीभ होती है और वह कीट-पतंगों को खाता है। और पृष्ठ के पिछले भाग पर सवाल होंगे, एक मेंढ़क के ... टांगें होती हैं। अब बच्चा खाली स्थान को भरकर खुश होगा जैसे उसने कोई बड़ा तीर मार लिया। और वह अगले पृष्ठ की तरफ बढ़ जाएगा। मेरी पुस्तकें इससे भिन्न हैं। उनमें बच्चों से चीजों को तलाश कर उनका अवलोकन करने और फिर उसे दर्ज करने को कहा जाता है। इसी तरह आगे बढ़ते हुए उनसे अपने अवलोकन अथवा अपने द्वारा दर्ज की गई बातों का विश्लेषण करने को कहा जाता है। विज्ञान में बहुत सारे पहलू होते हैं और उसमें बहुत ज्यादा विविधता की गुंजाइश होती है। इन दिनों शिक्षा में सही उत्तर बताने को बहुत बड़ी बात मान लिया गया है। मेरी पुस्तकें इस अर्थ में अलग हैं कि उनमें सवालों को खुला छोड़ दिया गया है और वे सही उत्तर से ज्यादा महत्त्व खुली बहस को बढ़ावा देने को देती हैं।

रोजलिंड : पर इस तरह बातचीत के लिए तो कुशाग्र लोगों की जरूरत होगी।

डेविड : बच्चे बहुत कुशाग्र होते हैं। आप इन पर बच्चों से बातचीत कर सकते हैं।

रोजलिंड : तब तो आपके यहां शिक्षकों को भी इस बारे में बहुत संवेदनशील होना चाहिए?

डेविड : बिल्कुल। शिक्षक को संवेदनशील होना ही चाहिए। मेरे विचार से तो ये कुछ ऐसा ही कहना हुआ कि शिक्षक को भी शिक्षित होना चाहिए। वे शिक्षित नहीं हैं इसलिए ठीक से शिक्षा हो नहीं पा रही है।

रोजलिड : तो क्या यही वजह नहीं है कि लोग मशीनों और वैसी ही अन्य चीजों की ओर मुड़ने लगे हैं?

डेविड : दिलचस्प ख्याल है। पर सवाल सिर्फ शिक्षकों का नहीं है, विद्यार्थियों का है, खास तौर पर। दस करोड़ विद्यार्थी हैं, मेरे हिसाब से, आज के दिन भारत में।

रोजलिंड : रेडियो के बारे में आप क्या कहेंगे ?

डेविड : असल बात तो यह है कि इन स्कूलों में या बच्चों के पास रेडियो है ही नहीं, एक बार मैं देश के एक बहुत बड़े नामी सस्थान में टी.वी. के महत्त्व पर आयोजित एक सेमिनार में गया था। मैंने टी.वी. के बारे में काफी कड़ी टिप्पणियां की थीं कि टी.वी. शिक्षा में एक अच्छे सहायक की भूमिका मात्र निभा सकता है जबकि आपके पास एक मात्र टी.वी. स्टेशन दिल्ली में हो। हम यदि प्रत्येक कक्षा को दिन में एक घंटा भी दें तब भी दिन के कम से कम दस घंटे देने होंगे, ऐसे में बच्चे क्या करेंगे? इसलिए यह एक संवर्द्धन कार्यक्रम से ज्यादा कुछ नहीं हो सकता। ठीक है कि आप ध्रुवीय रीछों की या पृथ्वी की सतह के नीचे की दृश्यावलियों की बहुत अच्छी तस्वीरें ला सकते हैं और वे यह सोचते हैं कि वे बड़े जबरदस्त कार्यक्रम दिखा रहे हैं। लेकिन आप उनसे सीख कुछ नहीं सकते क्योंकि यह सब पूर्णतः एकतरफा होता है। सीखना दुतरफा होता है (शिक्षार्थी की सक्रिय भागीदारी जरूरी होती है)। टी.वी. एकतरफा माध्यम है उसमें आपकी भागीदारी नहीं हो सकती। यही इसका खतरा है। आपको लगता है आप सीख रहे हैं लेकिन आप सीख कुछ भी नहीं रहे होते।

रोजलिंड : डेविड, मुझे लगता है कि पर्यावरण की आपकी अवधारणा भी अधिकांश लोगों की अवधारणा से कहीं अधिक व्यापक है, जिसे पर्यावरण अध्ययन कहा जाता है। आपने इस पर भी पुस्तकें लिखी हैं?

डेविड : मैंने पर्यावरण संबंधी कुछ पुस्तकें भी बच्चों के लिए लिखी हैं लेकिन उनकी भी बाजार में ज्यादा मांग नहीं है क्योंकि उनमें बच्चों से पर्यावरण के अध्ययन की अपेक्षा की गई है जबकि शिक्षक नहीं चाहते कि बच्चे पर्यावरण का अध्ययन करें। वे कुल मिलाकर इतना ही चाहते हैं कि बच्चे पूरे मन से पुस्तकों को याद कर लें। यहां तक कि बहुत अच्छे माने जाने वाले शिक्षक भी किसी पाठ्यपुस्तक का नाश करके रख देते हैं। दो साल पहले मैं दिल्ली आया तो मेरे एक दोस्त ने बताया कि उसकी एक मित्र स्कूल में पढ़ाती हैं, और वहां मेरी पुस्तकें ही लगी हुई हैं तो वह मुझसे बात करना चाहती हैं। मैंने कहा ठीक है उन्हें लिवा लाओ। वह नाश्ते पर आईं, तब मैंने पूछा कि पहले तो आप यह बताइए कि आप स्कूल में क्या करती हैं?

मेरी पुस्तक में पेड़ों के बारे में एक अध्याय है जिसमें कहा गया है कि ''स्कूल के रास्ते में आप कितने तरह के पेड़ों को देखते हैं? क्या आप उनमें से किसी पेड़ का नाम जानते हैं? क्या आपको उन पर पत्ते दिखाई देते हैं? कि कक्षा को आप कैसे पढ़ाती हैं?'' तब उन्होंने जवाब दिया। मैं किताब लेकर पढ़ती हूं, 'पेड़'। आप कितनी तरह के पेड़ देखते हैं? इसके बाद मैं श्यामपट्ट पर पेड़ों के नाम लिख देती हूं और बच्चे उन्हें अपनी कॉपी में उतार लेते हैं और उन्हें याद कर लेते हैं। और अगले दिन मैं पूछती हूं कि बताइए आपने कौन कौन से पेड़ देखे थे? विश्वास नहीं होता। यह स्थिति तो दिल्ली के प्रतिष्ठित स्कूल की है। आप सोच सकते हैं कि दूसरे स्कूलों में क्या होता होगा। पर्यावरण शिक्षा बहुत जरूरी है लेकिन शहरों में कोई पर्यावरण का अध्ययन नहीं करता। यहां तक कि आप उनसे पूछें कि रिक्शा पर जाते हुए उन्होंने कौन-कौन सी दूकानें देखीं, तब भी वे शायद जवाब न दे पाएं। वे शहरी वातावरण के बारे में कुछ नहीं जानते, न किसी और चीज के बारे में और न ही ग्रामीण वातावरण के बारे में।

रोजलिंड : कुल मिलाकर हालात बहुत भयावह दिखाई देते हैं। आप सकारात्मक हस्तक्षेप की क्या गुंजाइश देखते हैं?

डेविड : मैं नहीं जानता कि इसका जवाब क्या हो सकता है। मैं सिर्फ इतना कह सकता हूं कि मैं अपने छोटे से गांव में बैठ कर जिसे मैं अच्छी शिक्षा समझता हूं उसके लिए प्रयास करता रहूंगा। कुछ बच्चे जिन्हें इस प्रकार की खुली शिक्षा मिली होगी— जहां भय न हो, प्रतिस्पर्धा न हो, वे बहुत जागरूक हों आदि- शायद इन समस्याओं के हल ढूंढ सकें, जिनके हल मैं अपनी पृष्ठभूमि और अपने अनुबंधनों के कारण नही ढूंढ सकता।

- अनुवाद : देवयानी

नीलबाग में शिक्षा

नीलबाग में दी जाने वाली शिक्षा के मुख्य बिंदु अग्रांकित हैं। यही हमारी शिक्षण तकनीकों व बच्चों से हमारे संबंधों का मुख्य आधार है।

हम महसूस करते हैं कि सफलता एवं आनन्द के साथ सीखने के लिए शिक्षकों व बच्चों में प्रेमपूर्ण व आत्मीय संबंध बहुत जरूरी है। आमतौर पर पाए जाने वाले शिक्षक-छात्र संबंध में 'हम और वे' की मानसिकता बहुत प्रचलित है, जिससे बचा जाना बहुत जरूरी है। बच्चे बेहतर काम करते हैं जब उनमें यह भावना हो कि वे क्रूर शत्रुओं से नहीं वरन प्यार करने वाले दोस्तों से घिरे हैं। यहां न केवल स्टाफ और बच्चों के बीच बल्कि बच्चों में भी आपसी रिश्ते प्रेमपूर्ण बनाने का हरसंभव प्रयास किया जाता है। जो संस्कार शिक्षकों और बच्चों ने ग्रहण किए हैं और अपने चारों ओर की दुनिया से ग्रहण कर रहे हैं, उनके कारण संबंध अक्सर तनावपूर्ण हो जाते हैं। लेकिन खुले विमर्श का माहौल तथा प्रश्न पूछने एवं उत्तर देने की इच्छा वांछनीय संबंधों के विकास में बहुत सहायक है। हम अनुभव करते हैं कि शिक्षण को गतिशील होना चाहिए। जो शिक्षण नीरस या उबाऊ है या जीवंत नहीं है या जिसकी विषयवस्तु नीरस या उबाऊ है, एक सजग और प्रश्नाकुल मस्तिष्क को जन्म नहीं दे सकते। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि शिक्षक सदा ही शारीरिक रूप से क्रियाशील रहे, बल्कि वह विद्यार्थियों को जो दे, उन्हें वह जीवंत और ऐसा लगना चाहिए, जिसमें वे पूरी तरह लीन हो जाएं चाहे वह उन्हें जानकारी दे रहा हो, किसी कौशल का अभ्यास करवा रहा हो या उनसे किसी और किस्म की अंत:क्रिया का माध्यम बन रहा हो।

हम नीलबाग में हमेशा याद रखते हैं कि प्रतिस्पर्धा आदमी को आदमी से काट देने वाले कारकों में प्रमुख है और बहुत सारे दु:खों का भी कारण है। युद्ध, अन्तर्सामुदायिक संघर्ष, मानव का मानव के द्वारा शोषण और बहुत सी अन्य

बुराइयों का कारण बच्चों के एक अतिस्पर्धात्मक तंत्र में, लालन-पालन में देखा जा सकता है। जहां बच्चे को अपने पड़ोसी से प्रतिस्पर्धा के लिए खड़ा कर दिया जाता है और जहां किसी भी प्रकार का सहकार असंभव हो जाता है। एक बच्चा शैक्षिक और अध्ययनेतर गतिविधियों में स्वयं को दूसरे से काफी आगे पा सकता है, लेकिन जब तक इसका नैतिक अच्छाई से संबंध नहीं जोड़ा जाता, ये असमानताएं महत्त्वहीन बनी रहती हैं।

अगर हम स्पर्धा को हमारे शिक्षा-तंत्र का आधार नहीं बनाना चाहते तो हमें बच्चों में तुलना करने से भी बचना चाहिए और बच्चों को ऐसी तुलनाएं न करने के लिए शिक्षित करना चाहिए। आप नीलबाग में शायद ही सुनेंगे कि फलां उससे बेहतर है आदि-आदि या कि 'तुम्हारा काम उससे बेहतर है'। इसका मतलब शिक्षक का काम की गुणवत्ता के प्रति बौद्धिक अंधापन नहीं है बल्कि यह सतत् तुलना भरी दुनिया में जीने की बुराई की गहरी समझ को इंगित करने का संकेत है। उसका मतलब यह भी है कि आप नीलबाग में शायद ही 'अगर' से शुरू होने वाले वाक्य सुनेंगे। जैसे कि 'अगर तुम ठीक से बर्ताव करोगे, तो मैं तुम्हें खेलने की इजाजत दे दूंगा।'

हम नीलबाग में यह अनुभव करते हैं कि बिना स्पर्धा वाले समाज में ही सच्चा सहकार फल-फूल सकता है। इसलिए स्कूल का तंत्र, समयसारिणी और सीखने की स्थितियां ऐसी हैं जहां स्पर्धा नहीं है। हमारे यहां कोई अंक नहीं मिलते, कोई टैस्ट नहीं होते, कोई द्वेषकारक तुलनाएं नहीं हैं, इसलिए बच्चे अनुभव करते हैं कि वे अपने कौशल व ज्ञान खुशी से दूसरों के साथ बांट सकते हैं। अक्सर बीस बच्चों की कक्षा में चार या पांच बच्चे दूसरों की सहायता में लगे हुए दिख सकते हैं। इस तरह शिक्षक और सभी आयु एवं योग्यता स्तरों के बच्चे सीखने और दूसरे रचनात्मक कामों में सहयोग कर सकते हैं।

उपरोक्त (मान्यताओं) को ध्यान में रखते हुए यह तो बिना कहे ही स्पष्ट है कि नीलबाग में पुरस्कार और दण्ड का कोई उपयोग नहीं है। एकमात्र पुरस्कार प्रोत्साहन से मिलने वाला पुनर्बलन ही होता है। बच्चों को बेशक उनकी गलतियों के बारे में साफ-साफ बताया जाता है, लेकिन कोई भी गलती वस्तुपरक ढंग से देखी जा सकती है यदि इसे दर्शाने वाला सामान्यत: स्वार्थहीन सलाह देने वाला माना जाता हो। अत: नीलबाग में दंड को वांछित या आवश्यक नहीं समझा जाता। इसी से यह बात निकलती है कि अगर कोई दंड-व्यवस्था नहीं हो तो कोई नियम भी नहीं होंगे, अगर कोई नियम सचमुच में रखना हो तो उसे लागू करने का भी कोई तरीका होगा, बिना दंड के यह असंभव होगा।

ज्यादातर स्कूली तंत्रों में शिक्षक की एक अलग ही मुखमुद्रा होती है। अपनी सामान्य आवाज से अलग दूसरी आवाज से वह बोलता है। उग्रता का मुलम्मा चढ़ी उसकी मुख-मुद्रा और आवाज कक्षा के लिए ही होती है। कुछ हद तक यह बच्चे की शरारतों के विरुद्ध एक प्रतिरक्षा-तंत्र (डिफेंस-मैकेनिज्म) की तरह काम करता है तथा अंशत: यह कक्षा के उठे हुए प्लेटफार्म, अलग वेशभूषा और उच्चतर व्यवहार की तरह (श्रेष्ठतासूचक) 'स्टेटस सिंबल' का काम करता है जिसके द्वारा कि सामान्य शिक्षक बच्चों पर अपनी सत्ता चलाता है। नीलबाग के तनावमुक्त और मित्रतापूर्ण माहौल में शिक्षकों के लिए सत्ता जमाने वाले इन अवलंबों से बचना एवं खेल और काम में मानवीय तरीके से घुलना-मिलना आसान हो जाता है।

अभिप्रेरण मनुष्य के सीखने की प्रक्रिया का एक अहम हिस्सा है और जब कोई स्कूल सामान्य अभिप्रेरकों (जैसे- अंक, टैस्ट, कक्षोन्नति, इनाम और दंड, प्रतिस्पर्धा, तीखी झिड़की आदि) को त्याग देता है तब यह आवश्यक हो जाता है कि दूसरे अभिप्रेरक उनके स्थान पर रखे जाएं। नीलबाग में बच्चे अपने हर काम में काफी अभिप्रेरित दिखाई पड़ते हैं और यह अभिप्रेरण मोटे तौर पर दो तरह से उत्पन्न होता है, जिनका कि आपस में संबंध है। पहला विद्यालय की व्यवस्था से संबंधित है, जहां पर सामान्य तौर पर होने वाला विभाजन, जो कि प्राय: आयु और शैक्षिक आधार पर होता है, अनुपस्थित है। बच्चे को अपनी गति और स्तर पर काम करने दिया जाता है। बिना आगे बढ़ने या धीरे चलने के दबावों के, जो कि आम तौर पर कक्षा में काम करते हैं, इसी से यह संभव होता है कि बच्चे अपने काम में असफलता की बजाय सफलता अधिक मात्रा में प्राप्त करते हैं। यह सफलता सतत् प्रोत्साहन से मिल कर अभिप्रेरण का नि:शेष स्रोत बन जाती है। प्रोत्साहन एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारक है। यह अच्छा व्यवहार सुदृढ़ करने के लिए ही नहीं बल्कि बच्चों की शैक्षिक व सह-शैक्षणिक गतिविधियों में प्रेरित करने के लिए भी आवश्यक है। इसका मतलब यह नहीं है कि व्यवहार या कार्य के संपादन से हुई गलती की ओर इशारा नहीं किया जाता, बल्कि श्रेष्ठता की ओर लगातार बढ़ने को एक मूल्य के रूप में स्थापित किया जाता है।

अभिप्रेरण के पश्चात् बच्चे के सीखने में दूसरा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारक है ध्यान केन्द्रण की क्षमता। बिना ध्यान के, जो कि या तो शिक्षक पर होगा या अपने काम पर, अधिक नहीं सीखा जा सकता। अत: शिक्षक का एक मुख्य काम बच्चे को ऐसी क्षमता से युक्त करना है कि वह ध्यान लगा सके। यह विचार-विमर्श व अभ्यास के द्वारा संभव होता है और गाने या कविता सुनाने की

गतिविधि द्वारा भी। स्कूल के अंकुरण से ही, हमने नीलबाग में, गाना सिखाने में काफी समय व्यतीत किया है। यह अपने आप में एक बहुत आनंददायक सुफल-दायक अनुभव ही नहीं है, बल्कि इसने बच्चों में ध्यान देकर सुनने की आदत भी डाली है और अपने मस्तिष्क को अनुशासन में रखना भी सिखाया है।

सफल और आदर्श अध्ययन परिस्थिति के लिए दो कारक बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, वे हैं- शिक्षक की सक्षमता और आत्मविश्वास। नीलबाग में शिक्षक-छात्र संबंध पर ही नहीं, शिक्षक की व्यावसायिक सक्षमता विकसित करने पर भी बहुत ध्यान दिया जाता है। शिक्षकों को प्रेरित किया जाता है कि वे खूब पढ़ें। वे शिक्षा पर आधुनिकतम लेखकों को पढ़ें और उनमें से उन विचारों को चुनें जो कक्षा में शिक्षण के लिए सर्वाधिक उपयोगी लगते हों। यह व्यावसायिक सक्षमता उनमें आत्मविश्वास भर देगी और ये दोनों शिक्षक को एक ऐसी आदर्श अध्ययन परिस्थिति निर्मित करने के लिए प्रेरित करेंगी, जहां सफलतापूर्वक सिखाना संभव होगा।

कहना न होगा कि बच्चे अपने घरों और परिवेश से कुछ बुरी चीजें भी सीखते हैं और इससे कुछ व्यवहारगत (बिहेवियरल) समस्याएं भी लगातार रहती हैं। शिक्षक, जो कि ऐसे ही अतिस्पर्धात्मक और उबाऊ शिक्षा-तंत्र में बड़े हुए हैं- कक्षा में स्वयं को ऐसी स्थिति में पाते हैं, जहां संबंध-नाते कई बार टूटने के कगार पर पहुंच जाते हैं। नीलबाग में शिक्षकों को प्रोत्साहित किया जाता है कि जहां तक संभव हो सके वे बच्चों से संभावित टकराव से बचें क्योंकि ऐसे टकरावों से समस्या का जो समाधान होता है, वह दुर्भाग्यपूर्ण हो सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रारंभ में कुछ सीमा तक औपचारिकता या कहें रस्मो-रिवाज भी फायदेमंद होते हैं। यह औपचारिकता और उसका धीरे-धीरे सहजता एवं अनौपचारिकता में बदलना एक ऐसा पैटर्न है जो यहां की शिक्षा में बार-बार उभरता है। जब बच्चे कुछ साल पहले पहली बार यहां आए, तो समय-सारणी और पढ़ाने का तरीका आज की तुलना में अधिक औपचारिक था। मसलन अंग्रेजी और दस्तकारी की शिक्षा, औपचारिक तरीके व कौशल के अर्जन से आरंभ की गई ताकि आगे अधिक रचनात्मक तरीकों का स्वच्छंदतापूर्वक सहारा लिया जा सके। वैसे भी हमारा दिन संस्कृत श्लोकों के पाठ व गाने से शुरू होता है, एक तरह से शांत और औपचारिक माहौल में। जैसे-जैसे दिन चढ़ता जाता है औपचारिकता तिरोहित होने लगती है। इस तरह के नियंत्रण से वैसे ही संबंध बनते हैं जैसा हम चाहते हैं, मैत्री और सौहार्द के साथ। हमारी कोशिश रहती है कि हम बच्चों के साथ टकराव की स्थिति पैदा न करें जिसमें अपने शिक्षक

अथवा साथियों से भिड़ना उनकी विवशता बन जाए।

बच्चों की बहुत सारी समस्याएं होती हैं, कुछ उनके व्यक्तित्वों से उपजी होती हैं तथा कुछ का कारण हमारी शिक्षा पद्धति है। इन सभी समस्याओं को सहानुभूतिपूर्वक सुलझाना पड़ता है और संभव हो सके तो प्यार और बुद्धिमता के साथ। नीलबाग के शिक्षक इस बारे में सावचेत हैं कि बच्चों की समस्याओं में से बहुत सी समस्याएं तो वैसी ही हैं, जिनका वे अपने दैनिक जीवन में सामना करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि बहुत सारी समस्याओं का निपटारा शिक्षक और शिष्य द्वारा संयुक्त रूप से सीखने की प्रक्रिया में किया जाए क्योंकि वे 'बुद्धिमान शिक्षक का मूर्ख छात्र को प्रबोधन' की तकनीक से तो नहीं सुलझती हैं। कहना न होगा कि बहुत सारे बच्चों के लिए अपनी समस्याओं के बारे में बात करना घबरा देने एवं परेशान कर देने वाला अनुभव होता है या फिर अपनी समस्या को शब्द देना उनके लिए मुश्किल होता है। नीलबाग में जिस तरह के संबंध शिक्षक व छात्रों के बीच स्थापित किए जाते हैं, उनमें इस चीज को सहज बनाने पर जोर दिया जाता है।

शिक्षकों का प्रमुख गुण है धैर्य, पर इसे अर्जित करने में समय लगता है। अक्सर बच्चे वह नहीं सीख पाते, जो हम चाहते हैं कि वे सीखें; कि वैसा व्यवहार नहीं करते, जैसा हम चाहते हैं कि वे करें। ऐसा भी होता है कि वे वांछित सहयोग नहीं कर पाते या संबंधों के बिगड़ने से बच नहीं पाते। ऐसे ही शिक्षक भी स्वयं को अधूरा समझते हैं,या कि कक्षा को नियंत्रित करने में असफल पाते हैं या नए आवश्यक कौशल न सीख सकने पर अफसोस जताते हैं। ऐसे में धैर्य एक शिक्षक की मनोवैज्ञानिक बुनावट का आवश्यक हिस्सा लगता है।

स्कूल

क्या ऐसा स्कूल होना संभव है, जिसमें आमतौर पर प्रचलित शिक्षा व्यवस्था के दोष न हो, जो अतीत के बहुत सारे शिक्षाविदों और चिंतकों के विचारों को सन्निहित करता हो, साथ ही जो अनुशासनहीनता, गंदेपन और निम्न-स्तरीय शैक्षिक मापदण्डों से दूर हो, जो प्रगतिशील विचारधारा से अनुप्राणित होने के साथ इतिहास प्रसिद्ध स्कूलों से प्रेरणा पाता हो और जो परंपरागत शिक्षा एवं नवीन शिक्षा दोनों की अच्छाइयों का उपयोग कर सके।

नीलबाग अस्तित्व में है क्योंकि हम मानते हैं कि ऐसा स्कूल निर्मित किया जा सकता है। ऐसा स्कूल चलाना न तो मुश्किल है और न यह महंगा है।

नीलबाग ऐसा स्कूल है जिसमें फीस नहीं लगती और यह ऐसे तबके को ध्यान में रखकर बनाया गया है जिसे हम आम तौर पर वंचित कहते हैं। यह ग्रामीण भारत के हृदय में बसा हुआ है जो कि पहाड़ियों और पेड़ों से घिरा है। यह आवासीय स्कूल नहीं है, हालांकि कुछ विद्यार्थी नीलबाग में काम करने वालों की संतानें हैं। दूसरे बच्चे आस-पास के गांवों से आते हैं।

स्कूल के अतिरिक्त यहां शिक्षकों को प्रशिक्षित करने का विद्यालय है, कार्यशाला है और मिट्टी के बर्तन बनाने का छप्पर है।

वर्तमान में स्कूल में 22 बच्चे हैं— 3 बालक और 19 बालिकाएं जिनकी आयु लगभग 2 से 13 वर्ष के बीच है। वे सभी गरीब परिवारों से हैं। यद्यपि एक या दो अभिभावक तेलुगु पढ़ सकते हैं, तथापि बच्चे शिक्षित परिवेश से नहीं आते हैं और उनके घरों में पुस्तक या कोई लिखित सामग्री उपलब्ध नहीं है। स्वभावतः बच्चे बुद्धि, योग्यता और अपनी उपलब्धियों के स्तर पर एक समान नहीं हैं।

इस विद्यालय के संचालन के कुछ प्रमुख नियामक विचार निम्नांकित हैं—

बच्चों को इस बात की स्वतंत्रता है कि वे किसी कक्षा में आएं या न आएं।

बच्चों को एक-दूसरे से सहयोग करने के लिए प्रेरित किया जाता है न कि स्पर्धा करने को। स्पर्धा आम तौर पर स्कूल में मुख्य अभिप्रेरण-कारक होता है लेकिन नीलबाग में ऐसा नहीं है। इसका प्रमुख कारण यह है कि अधिकांश विषयों में हर बच्चे की अपनी अलग गति होती है और अलग स्तर होता है। यद्यपि कुछ ऐसे समूह बनाए जाते हैं जो थोड़े समय के लिए बच्चों को एक साथ रखते हैं, उन बच्चों को जो कि सीखने में समान स्तर पर होते हैं, लेकिन ऐसे समूह लगातार बदलते रहते हैं, क्योंकि बच्चों की सीखने की गति अलग-अलग होती है।

स्कूल में कोई बड़ी-छोटी कक्षाएं नहीं हैं और फलस्वरूप कोई अगली कक्षा में चढ़ने जैसा नहीं होता। कुछ बच्चे योग्यता, परिश्रम और दूसरे कारकों से प्रेरित हो अन्य बच्चों की तुलना में तीव्रता से प्रगति करते हैं और इसी तरह विपरीत कारणों से कुछ बच्चे धीमी गति से आगे बढ़ते हैं। सामान्य प्रशासकीय सुविधा के लिए बच्चे चार समूहों में विभाजित हैं जिन्हें 'किंगफिशर', 'स्वैलो', 'सनबर्ड' और 'रॉबिन' (चारों ही पक्षियों के नाम हैं) कहा जाता है। यदा-कदा ऐसे समूह भी बनाए तो हैं मसलन एक छोटे बच्चों का समूह, जो अभी गणित नहीं सीखता है या ज्यादा बच्चों का समूह जो अभी तृतीय भाषा नहीं सीखता। कुछ विषय तेलुगु और कुछ अंग्रेजी में पढ़ाए जाते हैं, ताकि एक भाषा माध्यम की पढ़ाई के दोषों से बचा जा सके। वैसे तो ये दोष अनेक हैं लेकिन मुख्य दोष

अग्रांकित हैं-

अ) तेलुगु और कन्नड़ माध्यम के स्कूलों में बच्चों का अंग्रेजी का एक कालांश होता है और प्रायः पांचवीं या छठी कक्षा तक तो बिल्कुल भी अंग्रेजी नहीं होती। इसका तात्पर्य है कि वहां अंग्रेजी पढ़ने और लिखने की कोई क्षमता अर्जित नहीं करता और इससे उसे बहुत नुकसान होता है, यदि वह स्वयं कोई चीज अंग्रेजी की किताबों से सीखना चाहे। बच्चों के लिए कन्नड़ और तेलुगु में बहुत कम किताबें उपलब्ध हैं और जो हैं वे या तो सामान्य पाठ्यपुस्तकें हैं या बहुत थोड़ी-सी पूरक-सामग्री जो मूलतः किस्से-कहानियां हैं। बच्चों के लिए किस्से-कहानियों के अलावा शायद ही कोई सामग्री हो, इसलिए जिन स्कूलों में मातृभाषा शिक्षा का माध्यम है, विस्तृत अध्ययन की संभावनाएं न्यून हो जाती हैं।

ब) दूसरी ओर, अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में, बच्चा अगर अंग्रेजी में सहज अधिकार अर्जित कर लेता है, तो वह बहुत कुछ पढ़ सकता है, यदि स्कूल में काफी सारी अंग्रेजी की किताबें हों, वैसे बहुत कम स्कूलों मे ऐसा होता है, पर ज्यादातर अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में, बच्चा शायद ही अपनी मातृभाषा सीखता हो और हिन्दी भाषा के सतही ज्ञान से काम चलाने लगता है, भाषा के वास्तविक ज्ञान से कोसों दूर। इसके अतिरिक्त इन स्कूलों की ज्यादातर गतिविधियां भारतीय चिंतन और संस्कृति से कटी हुई होती हैं।

हालांकि बच्चों को काफी प्रोत्साहन दिया जाता है और उनके काम में रुचि ली जाती है, कोई अंक या ग्रेड (श्रेणी) नहीं दी जाती। कोई टैस्ट या परीक्षाएं नहीं होतीं क्योंकि बच्चों के समूह छोटे होने के कारण शिक्षक बच्चों के दैनंदिन कामों पर नजर रख सकता है। इससे मूल्यांकन के प्रचलित तरीकों पर समय बर्बाद नहीं किया जाता।

बच्चे की किताबों में कोई रिमार्क नहीं लिखे जाते, कभी-कभार लिखी जाने वाली प्रशंसा के अतिरिक्त।

बच्चे की पढ़ाई में हुई प्रगति को नैतिकता से नहीं जोड़ा जाता। दूसरे शब्दों में, बच्चे को अच्छा नहीं कहा जाता, अगर वह कोई सवाल सही कर देता है, और बुरा भी नहीं, अगर सवाल गलत हो जाए। कोई दंड नहीं दिया जाता, न तो किसी तथाकथित गलती के प्रतिकार के रूप में, न ही भावी गलतियों को हतोत्साहित करने की भावना से। न ही ऐसे दण्ड देने के लिए कोई स्कूल समिति है जो शिक्षक स्वयं नहीं देना चाहता।

शुरू से ही बच्चों को सिखाया है कि वे स्वयं सीखें और अपने सीखने के प्रति जिम्मेदार रहें।

बिना स्पर्धा, दंड, अंक और परीक्षा के जो कि सामान्य स्कूलों के अभिप्रेरक कारक हैं, अभिप्रेरण कैसे पैदा किया जाता है और कैसे उसे बनाए रखा जाता है- यह ऐसा सवाल है, जिसे कोई भी पूछ सकता है। सच्ची अभिप्रेरणा जो नीलबाग के बच्चों में अच्छी तरह भरी है, शायद निम्न चीजों से पैदा होती है—

अ) शिक्षक और बच्चों के बीच मधुर संबंध

ब) सामग्रियों का रोचक प्रस्तुतीकरण

स) प्रत्येक बच्चे को उसके स्तर और क्षमता के अनुसार सामग्री देना, न कि किसी काल्पनिक औसत कक्षा के स्तरानुसार, जिसे बच्चा अधिकतर सफलतापूर्वक काम में ले सके।

द) अनवरत व आनंददायी उत्साहवर्धन

य) नए बौद्धिक अनुभव को प्रचुरता

र) किसी भी समय बच्चे को अपनी पसंद का काम चुनने की स्वतंत्रता। हालांकि यह स्वतंत्रता समय-सारणी से रूपांतरित होती है। इसका व्यावहारिक अर्थ है कि बच्चे को अंग्रेजी के कालांश में अंग्रेजी का काम करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। (यदि वह बाहर पेड़ों के नीचे न खेलना चाहे) वह उस कालांश में अंग्रेजी विषय से संबंधित कोई भी गतिविधि चुन सकता है।

ल) सामान्यतः हर बच्चा दूसरे बच्चे का सहायक व शिक्षक होता है और साथ में सीखने वाले प्रौढ़ की भी पूरी सहायता करता है।

व) हर गतिविधि को बच्चे व स्टाफ के लिए आनंददायक बनाने का प्रयत्न होता है और वे ऐसी हैं भी।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि किसी प्रगतिशील स्कूल की तर्ज पर यहां मुक्त समय-सारणी का आलम चलता है। न ही यहां एकीकृत दिन या खुली योजना प्रणाली है। एक नियमित समय-सारणी लागू है लेकिन यह कहा जाना चाहिए कि यह शिक्षकों की सुविधा के लिए है, न कि बहुत कड़ी अनुपालना के लिए। हालांकि ऐसा लगता है कि बच्चे कुछ हद तक दिन की व्यवस्था को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेते हैं। विशेष रूप से यदि समय-सारणी इस प्रकार है—

8.45 बच्चों से 8.45 पर विद्यालय प्रांगण में होने की अपेक्षा की जाती है। एक बच्चा विद्यालय की चाबी ले लेता है और इकट्ठा होने से आधा घंटा पहले बच्चे ऐसे कार्य करते हैं जो उन्हे सौंपे जाते हैं (जैसे- कक्षाओं की सफाई, पेडों को पानी देना, पानी पीने के गिलासों को धोना आदि, चूंकि विद्यालय में नौकर की व्यवस्था नहीं है)। जिन कामों को किया जाना है उन्हे ब्लैकबोर्ड पर लिख दिया जाता है। हर हफ्ते बच्चे द्वारा किये जाने वाला काम बदल जाता है।

9.00 घंटी बजती है और बच्चे पंक्तिबद्ध होकर कक्षा में निर्धारित स्थानों पर बैठ जाते हैं। दिन की शुरुआत में हम औपचारिकता से काम लेते हैं। कक्षा में बैठने की जगह निर्धारित है। दिन में सभा के बाद ही वे इसे बदल सकते हैं। जब सब बच्चे बैठ जाते हैं, तब सुबह संस्कृत के कुछ श्लोकों से प्रारम्भ होती है। इसके पश्चात् विभिन्न भाषाओं में समूह गायन होता है।

9.40 आम तौर पर इस समय पर 10 मिनट की छुट्टी होती है और बच्चे या तो खेलते हैं या अपने बगीचे में पानी देते हैं। हर बच्चे की एक फूलों की क्यारी होती है और इसके अतिरिक्त एक सामूहिक उद्यान होता है जहां वे सब्जियां उगाते हैं। इसके बाद बच्चे अंग्रेजी भाषा पर काम करते हैं जिसमें पढ़ने और लिखने के अतिरिक्त कभी-कभी मौखिक कार्य भी होता है। हर बच्चा तरह तरह की पाठ्यपुस्तकें इस्तेमाल करता है और वह भी अपनी गति पर।

10.45 अन्तराल

11.00 बड़े बच्चे जो कि तेलुगु व अंग्रेजी या दोनों को ठीक-ठीक पढ़ सकते हों, आधा घंटा सभी तरह की पूरक किताबें पढ़ने में व्यतीत करते हैं, या तो कक्षा में या पेड़ों के नीचे। स्कूल में अच्छा पुस्तकालय है और बच्चों को अधिक से अधिक पढ़ने के लिए प्रेरित किया जाता है। जो बिना किसी सहायता के पढ़ने में असमर्थ हैं वे या तो खेलते हैं या साथ बैठकर कहानी सुनते हैं।

11.30 बच्चों को दो समूहों में विभाजित किया जाता है। हर समूह मनमर्जी के आधार पर, बिना उनकी योग्यता या उम्र को ध्यान मे रखकर बनाया जाता है। हर समूह में 3 से 13 वर्ष आयु के बच्चे होते हैं जिसमें लड़के और लड़कियां दोनों होते हैं। समूहों का संघटन हर पखवाड़े बदल दिया जाता है। एक समूह तेलुगू पर काम करता है दूसरा दस्तकारी पर।

तेलुगू का काम व्यक्तिगत स्तर पर होता है और बच्चे पाठ्यपुस्तकों को अपनी गति से पढ़ते हैं और कार्यपुस्तिका में काम करते हैं जो कि बच्चे की क्षमतानुसार होता है।

इस समय दूसरे समूह को दस्तकारी सिखाई जाती है और बच्चे अपने-अपने काम करते हैं।

12.30 (थोड़ा पहले या बाद में सुविधानुसार) बच्चे दोपहर के भोजन के लिए अपने घरों को लौट जाते हैं, जो कि इस समय स्कूल द्वारा नहीं दिया जाता। उम्मीद है कि भविष्य में ऐसा संभव हो पाएगा।

2.00 सारे स्कूल की एक साथ विज्ञान और पर्यावरण की कक्षा लगती है। ये दोनों विषय अंग्रेजी अथवा तेलुगु में पढ़ाए जाते हैं लेकिन बड़े बच्चे जिस पाठ्यपुस्तक का इस्तेमाल करते हैं, वह अंग्रेजी में होती है। हर हफ्ते तीन दिन विज्ञान को और दो दिन पर्यावरण अध्ययन को दिए जाते हैं।

2.50 अंतराल। अगले आधे घंटे में स्कूल को तीन खंडों में बांट दिया जाता है। कुछ बच्चे कन्नड़ सीखते हैं, लेकिन यह चौथी भाषा स्कूल के सात सबसे बड़े बच्चों तक ही सीमित है, दूसरे बच्चे केवल तीन भाषाएं ही सीखते हैं। इसी तरह सभी बच्चे गणित नहीं सीखते हैं। इसी समय छोटे बच्चों का एक समूह गणित सीखता है। बहुत छोटे बच्चे मिट्टी का काम सीखने जाते हैं, जहां वे मिट्टी के मॉडल बनाते हैं और चाक चलाना सीखते हैं।

3.30 छोटे बच्चे जो अभी तक गणित कर रहे थे, मिट्टी के बर्तन बनाने के शैड पर चले जाते हैं और बड़े बच्चे गणित सीखते हैं। आशा है कि गणित के लिए समूहों में विभाजन अगले साल मिट जाएगा और गणित सीखने वाले बच्चे एक समूह में हो जाएंगे जहां उन्हें उनकी गति पर काम करने को प्रोत्साहित किया जाएगा। लेकिन यहां भी तेलुगु और दस्तकारी का काम करने वाले बच्चों की तरह समूहन होगा क्योंकि (बर्तन बनाने की शैड) में जगह सीमित है। हर हफ्ते शुक्रवार को बड़े बच्चों का 3.30 से 4.00 बजे तक एक विशेष पीरियड होता है, जिसे प्रश्नकाल कहा जाएगा और वहां बच्चे अपनी पसंद के सवाल पूछते हैं। कई तरह के सवाल पूछे जाते हैं और नैतिकता व अच्छाई से संबंधित समस्याओं पर विमर्श होता है।

4.00 से 5.00 के बीच बहुत सारी गतिविधियां चलती हैं। बड़े बच्चों में से दो बर्तन बनाने के शैड पर जाते हैं जो यह उनके लिए संभव बनाता है कि यदि वे चाहें तो आधा घंटा चाक पर बिताएं। दूसरे बच्चे अपने बगीचों को पानी देते हैं या सामूहिक सब्जी के बगीचे में खेती करते हैं या खेलते हैं या घर चले जाते हैं। अगर कोई इमारत बन रही है तो वे इमारत पर काम करते हैं।

6.00 सीनियर बच्चे इस समय स्कूल में होमवर्क के लिए लौटते हैं। एक प्रेशर लैम्प उन्हें दिया जाता है और दो घंटे का यह पीरियड बिना किसी निरीक्षण के संपन्न होता है। यहां आना या न आना बच्चों की इच्छा पर निर्भर है। कोई होमवर्क जैसी चीज नहीं दी जाती है, पर बच्चे जो भी काम करते हैं वह सामान्य कालांशों में जांचा जाता है। बच्चों को यह स्वतंत्रता होती है किसी भी विषय पर कितना ही समय लगाएं, बात करें, एक दूसरे की सहायता करें, खेल खेलें, चित्र बनाएं या पढ़ें। यह बिना निरीक्षण का समय बच्चों के लिए बेहद उपयोगी होता

है। केवल इसलिए नहीं कि वे जो काम यहां करते हैं वह अन्यत्र कक्षाओं में करना पड़ता है बल्कि इसलिए भी कि यहां उन्हें अपने आप काम करना सीखने का अवसर मिलता है।

स्कूल छोटा है। इसे जानबूझकर छोटा रखा है क्योंकि हम बच्चों और स्टाफ के बीच मजबूत और आत्मीय संबंध स्थापित करने पर जोर देते हैं और यह भी संभव है जब स्टाफ सभी बच्चो को जाने और न केवल जाने बल्कि अच्छी तरह जाने। इसका मतलब है कि स्टाफ के सदस्य बच्चों को ऐसी सहायता और सलाह दे सकते हैं जो उनके बौद्धिक और नैतिक विकास के लिए आवश्यक हो। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि किसी तरह के संस्कार आरोपित किए जाने का प्रयास किया जाता है। किसी तरह का मताग्रह या राय बच्चों के सामने प्रस्तुत नहीं की जाती। किसी प्रकार की धार्मिक या राजनीतिक विचारधारा उनके सामने नहीं रखी जाती। स्कूल का उद्देश्य किसी सांचे में ढला आदर्श विद्यार्थी बनाना नहीं है। कहना न होगा, जैसे ही बच्चों और शिक्षकों में अच्छे संबंध होंगे, संस्कार-निर्माण से बच पाना संभव होगा, कम से कम निषेधों के जरिए। दूसरे शब्दों में, अगर शारीरिक उछलकूद, रगबी या फुटबाल या वीणा की कक्षाएं नहीं होंगी तो बच्चा उनकी इच्छा किए बिना ही बड़ा हो जाएगा। बौद्धिक और व्यावहारिक गतिविधियों के चयन मात्र से संस्कार निर्माण के काम से बचा नहीं जा सकता। यानि सकारात्मक किस्म के अनुकूलन को टाला जाता है, कम से कम ऐसे मसलों में जो विवादास्पद हैं। ज्यादातर लोग इस बात से सहमत होंगे कि बच्चे को प्रकृति की सुंदरता के प्रति सचेत बनाया जाए, उन्हें यह बताया जाए कि सत्य की खोज करना अच्छा है। अपने काम में लगातार आगे बढ़ते रहने में बड़ा सुख है या उन्हें यह बताना कि अपने आप को साफ रखना चाहिए। ये तो मोटे तौर पर अविवादास्पद बिंदु हैं। दूसरी तरफ, चूंकि सभी के राजनीतिक, नैतिक व धार्मिक विचार एक जैसे नहीं होते, अत: उन्हें बच्चों के सामने नहीं रखा जाता। बच्चे निस्संदेह इन चीजों के बारे में सीखेंगे, लेकिन उन्हें यह नहीं बताया जाएगा कि 'अ' सही है और 'ब' गलत। उनसे अपेक्षा की जाएगी कि इस पर अपना मत वे स्वयं बनाएं या कि अपना निर्णय तब तक स्थगित कर दें, जब तक कि वे स्वयं कोई राय बनाने लायक क्षमता अर्जित नहीं कर पाते।

बच्चों द्वारा काफी समय कौशल अर्जित करने के कार्यों (व्यावहारिक गतिविधियों) पर व्यय किया जाता है, जो कि अकादमिक कामों से भिन्न है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हम व्यावसायिक शिक्षा या ऐसी किसी चीज के बारे में सोच रहे हैं। हम नल ठीक करने का या बढ़ईगिरी का प्रशिक्षण नहीं दे रहे

हैं, बल्कि मानवों को शिक्षा दे रहे हैं। सीखने के सामान्यीकरण (यह सिद्धांत की एक क्षेत्र में प्राप्त दक्षताएं दूसरे क्षेत्र में हस्तान्तरित होती हैं, उदाहरणार्थ अच्छा लकड़ी का काम सीखने में मदद मिलती है- संपादक) के बारे में जो कुछ भी कहा गया हो, हमें यह लगता है कि यदि बच्चा दक्षताएं प्राप्त करने की कला सीख लेता है तो (अर्थात् दक्षता सीखना सीख जाता है तो- संपादक) इस क्षमता का सामान्यीकरण संभव है। व्यावहारिक गतिविधियां दक्षता प्राप्त करने में क्षमता हासिल करने के सर्वश्रेष्ठ तरीकों में से एक हैं। मुख्य रूप से इसलिए कि बच्चों को इनमें बहुत आनन्द आता है। उदाहरणार्थ गायन को इस समय-सारणी में अंग्रेजी के अलावा सबसे अधिक समय दिया जाता है। हमने पाया है कि गाना सीखने की प्रक्रिया में बच्चा सुनना भी सीखता है और यह दूसरे विषयों को सीखने में अत्यन्त मददगार है। हमारा जोर कौशल और 'कन्सेप्ट' (विचार) सीखने पर है, न कि सूचनाओं के संग्रह पर। स्कूल का सारा ढांचा इस तरह निर्मित किया गया है कि बच्चा स्वयं सीखने की क्षमता अर्जित करे और दूसरों को भी सीखने में मदद करे।

समूह की 'पारिवारिक व्यवस्था' (एक ही समूह में विभिन्न आयु वर्ग के बच्चों को रखना) के अनगिनत फायदे हैं। शायद इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तो यही है कि इस ढांचे में बच्चे एक दूसरे की सीखने में मदद करें, इसकी व्यवस्था बहुत सरलता से की जा सकती है। क्योंकि बच्चों की आयु, बौद्धिक विकास एवं कड़ी मेहनत करने की क्षमताओं में व्यापक अंतर एक ही समूह में पाया जाता है। अत: सदा ही कुछ बच्चे कुछ अन्यों से अधिक जानने वाले मिल जाते हैं। फिर एक ऐसे वातावरण में जो तनावमुक्त हो, मैत्रीपूर्ण हो और जहां प्रतिस्पर्धा नहीं आपसी सहयोग हो, स्वीकृत जीवन मूल्य हों, दूसरों को सीखने में मदद करना एक आनन्ददायक एवं मूल्यवान गतिविधि हो जाती है। बच्चे अपने साथियों से भी उतना ही अच्छी तरह सीखते हैं जितना कि वयस्कों से, और कई बार तो साथियों से बेहतर सीखते हैं। ऐसी व्यवस्था 25 या 30 बच्चे होने पर भी सामान्य तौर पर अपनाई जाने वाली सख्त शिक्षण पद्धतियों की तुलना में बच्चे अधिक सीखते हैं। एक और बड़ा लाभ है। विशेष रूप से भारत में जहां छोटा अपने से बड़े की बात सुनता है, उससे बड़ा थोड़े और बड़े की और वह अपने से बड़े की। अत: ऐसे वातावरण में सामाजिक अनुशासन स्वाभाविक एवं सरलता से आयु भेद समूह में व्यवहार का अंग बन जाता है। आज की प्रचलित प्रणाली में सारा अनुशासन वयस्क (शिक्षक) की तरफ से आता है, अत: बच्चों में 'हम और वे' (हम माने बच्चे और वे माने शिक्षक) की भावना भी सामान्य बात है। 'परिवार

समय व्यवस्था' में अनुशासन बच्चों की तरफ से भी आता है अत: हम और वे मानसिकता से बचने में मदद मिलती है।

वर्तमान में स्कूल के विषयों और गतिविधियों पर एक नजर

अंग्रेजी

कक्षा में बहुत सारा मौखिक कार्य होता है। चार साल के बाद सारे बच्चे अंग्रेजी ठीक से समझ लेते हैं और जो थोड़े बड़े हैं, वे इस भाषा में बातचीत और लेखन के जरिए अपने भावों एवं विचारों को संप्रेषित कर सकते हैं। विविधतापूर्ण पाठ्यपुस्तकें प्रयोग में लाई जाती हैं और पूरक पुस्तकों का यहां एक अच्छा पुस्तकालय भी है। कक्षा में मौखिक कार्य, पढ़ने और लिखने के अलावा 11 से 11.30 के बीच बच्चों को पेड़ों के नीचे बैठकर पढ़ने के लिए प्रेरित किया जाता है। यह योजना पिछले साल ही शुरू की जा सकी क्योंकि उससे पहले तक बच्चे अपने बूते पर अच्छी तरह नहीं पढ़ सकते थे। ज्यादा बच्चे महीने में लगभग 15 पुस्तकें पढ़ लेते हैं और आने वाले वर्षों में यह संख्या बढ़ जाएगी। उन्हें विविधतापूर्ण काव्य पाठ भी सुनने को मिलता रहता है। कई तरह की कार्य पुस्तिकाओं का इस्तेमाल हो रहा है और बच्चे सुलेख के लिए इटेलिक (टेढ़े अक्षर वाली सुलेख के लिए) पुस्तिकाएं भी काम में लेते हैं। (अभी दिसम्बर 1976) एक तीन बच्चों का, एक चार बच्चों का, एक पांच बच्चों का और एक अन्य तीन बच्चों का समूह है और शेष बच्चे अपने आप काम करते हैं, लेकिन ये समूह बार बार बदलते रहते हैं। रचनात्मक लेखन हाल ही में शुरू किया गया है और बहुत सारे बच्चे अपनी कविताएं व कहानियां लिखते हैं। उनमें से कुछ तो पाक्षिक न्यूज लेटर के लिए प्रकाशित होती हैं।

तेलुगु

तेलुगु सभी को सिखाई जाती है हालांकि जो बहुत छोटे हैं, उन्होंने अभी पढ़ना या लिखना शुरू नहीं किया है। सभी आयु के बच्चों के दो समूह हैं, जब एक तेलुगु सीख रहा है तो दूसरा दस्तकारी सीखने जाता है।

पाठ्यपुस्तकें मातृभाषा में उपलब्ध सामान्य पुस्तकें नहीं हैं बल्कि उन्हें शिक्षक द्वारा बहुत-सी छपी सामग्री में से रचनाएं चयनित करके बनाया जाता है। हर पुस्तक में एक कहानी या गद्यांश होता है, अंत में सवाल होते हैं जो कि

पाठ्यपुस्तकों में सामान्य तौर पर पाए जाने वाले प्रश्नों से बहुत भिन्न होते हैं। संदर्भ पर भी प्रश्न होते हैं, पर ऐसे सवाल नहीं होते हैं जिनका कि पाठ से ज्यों का त्यों उत्तर दिया जा सके। ज्यादातर सवाल ऐसे होते हैं जो बच्चे से कल्पनाशीलता और रचनात्मकता की मांग करते हैं। इन छोटी किताबों और कार्य-पुस्तिकाओं के अलावा एक निश्चित समय मौखिक कार्य और विविध लेखन कार्यों को दिया जाता है। बच्चे कहानियां और कविताएं लिखते हैं और इसके अलावा, पाक्षिक दीवार समाचार पत्र के लिए समाचारों को प्रस्तुत करते हैं।

कन्नड़

सभी बच्चे कन्नड़ नहीं सीखते। केवल बड़े बच्चे ही सीखते हैं। कर्नाटक राज्य की यह भाषा उनके लिए चौथी भाषा है और उन्होंने भी दो साल पहले ही इसे सीखना आरंभ किया है। पहला शिक्षक ऐसा था जिसकी मातृभाषा तेलुगु थी और जो कन्नड़ कतई नहीं जानता था। हमने यह सोच कर प्रयास किया कि देखें इस भाषा को न जानने वाला शिक्षक बच्चों में इसे पढ़ने-जानने की दिलचस्पी पैदा कर सिखा सकता है या नहीं। हम यह कह सकते हैं कि यह प्रयोग काफी सफल रहा। सौभाग्य से तेलुगू और कन्नड़ लिपियों में समानता है और दोनों लिपियां लगभग पूरी तरह ध्वन्यात्मक (Phonic) हैं। आधुनिक तकनीकों का प्रयोग किया गया, पढ़ने और लिखने के अलावा बहुत सारा मौखिक कार्य भी हाथ में लिया गया, मौखिक काम समूहों में किया गया। चित्रों का वर्णन किया गया आदि-आदि। कन्नड़ सीखने के दूसरे साल में प्रशिक्षण स्कूल की एक छात्रा से बहुत मदद मिली, जिसकी मातृभाषा कन्नड़ है, लेकिन वह इस साल मार्च में चली जाएगी। भविष्य में हम मौखिक कार्य के लिए एक छोटा टेपरिकार्डर काम में लेंगे। प्रचलित पाठ्यपुस्तकों को काम में नहीं लिया जाता। प्रत्येक बच्चे की जरूरत के मुताबिक पाठ्यसामग्री विकसित करने का काम खुद शिक्षक करता है।

संस्कृत

कोई औपचारिक शिक्षण प्रारंभ नहीं किया गया है लेकिन बच्चों ने अब तक महाभारत, हितोपदेश और दूसरे स्रोतों से लगभग 60 श्लोक याद कर लिए हैं। अब उन्होंने रामायण के संक्षिप्त संस्करण (150 श्लोक) को पढ़ना प्रारंभ किया है। जब किसी नए श्लोक से परिचय कराया जाता है तो उसे तेलुगु या अंग्रेजी में समझाया जाता है और फिर कंठस्थ किया जाता है। संस्कृत की औपचारिक

शिक्षा इस वर्ष आरंभ की जाएगी, जिसमें पढ़ना, लिखना, और बोलना शामिल है। बच्चे पाक्षिक दीवार-समाचारपत्र से देवनागरी लिपि तो अभी से सीख रहे हैं।

हिन्दी

हिन्दी सिखाना इस साल से शुरू होगा, ऐसी उम्मीद है।

विज्ञान

एस.एस.एल.सी. के स्तर तक के विज्ञान के सभी विषयों के उपकरण स्कूल में उपलब्ध हैं। सभी उपकरणों को वर्करूम में आवश्यक प्रायोगिक कार्यों के लिए रखा गया है। विज्ञान और दस्तकारी के लिए बच्चों ने यह नया कमरा स्वयं तैयार किया है। कहना न होगा कि यह कार्य बच्चों द्वारा उनकी क्षमताओं और स्तर के अनुसार ही किया जा रहा है। बड़े बच्चे जो स्वतंत्र तौर पर कार्य करने में सक्षम हैं अपनी गति पर काम करते हैं, यद्यपि उनमें से कुछ एक ही प्रोजेक्ट पर काम करते हुए छोटे समूह बना लेते हैं। छोटे बच्चे विज्ञान से संबंधित चित्र बनाने और उन पर लिखने का काम करते हैं। इसमें बड़े बच्चे उनकी सहायता करते हैं। बच्चे 'आओ विज्ञान की खोज करें' (लेट'स डिस्कवर साइंस - डेविड ऑसबरॉ- सं.) नामक शृंखला को काम में लेते हैं। पूरक पुस्तकों के रूप में नुफील्ड की विज्ञान पुस्तकों तथा विज्ञान की 5/13 शृंखला की पुस्तकों को काम में लिया जाता है।

पर्यावरण अध्ययन

विद्यालय के प्रारंभिक तीन सालों के दौरान सभी बच्चे इस पीरियड में एक साथ बैठते थे, हालांकि कुछ छोटे बच्चे पढ़-लिख पाने में असमर्थ थे। आम तौर पर कक्षा को समूहों में विभाजित कर दिया जाता था। प्रत्येक समूह में हर आयु के बच्चे होते थे। यह इसलिए कि छोटे बच्चे विभिन्न प्रयोगों के होने की प्रक्रिया में हिस्सा ले सकें या उन्हें देख सकें। अब ज्यादातर बच्चे, जिनमें छोटे बच्चे भी शामिल हैं, कुछ पढ़ सकते हैं। अतः यह कक्षा अंग्रेजी की कक्षा के पैटर्न पर ही चलाई जाती है। ज्यादातर बच्चों के पास अपनी पाठ्यपुस्तकें हैं और वे अपनी गति पर आगे बढ़ते हैं। कई बार ऐसा होता है कि बच्चे अपनी पुस्तकों में एक ही जगह होते हैं। और इस तरह वे विभिन्न गतिविधियां साथ-साथ कर सकते हैं। उसके अलावा शिक्षक छोटे बच्चों के लिए विशेष सामग्री तैयार करते हैं जिसमें लेखन के बजाय चित्र बनाना अधिक होता है। 'जीने के बारे में सीखना' (लर्निंग

अबाउट लिविंग- डेविड ऑसबरॉ- सं.)

गणित

आज के भारत में परंपरागत और आधुनिक गणित को लेकर जो बहस छिड़ी हुई है, उसे दोनों को पढ़ाकर सुलझाया गया है। पर कुछ स्कूलों में जहां यह तरीका (दोनों प्रकार की गणित पढ़ाने का) अपनाया जाता है वहां पारंपरिक गणित कक्षा आठ तक और आधुनिक गणित उसके बाद पढ़ाई जाती है। यह आधुनिक गणित सिखाने के पीछे मूल सिद्धांत को ही नकारता हुआ लगता है, और निश्चय ही यह तरीका बच्चों को समुच्चय, टेस्सेलेशन और नेटवर्क्स की विशिष्ट शब्दावली सीखने को तो प्रोत्साहित करता है पर बिना किसी समझ के। आधुनिक गणित में बल इस बात पर होता है कि गणितीय अवधारणाओं को गणना में उनके उपयोग से पहले सिखाया जाए, और यही आधुनिक गणित की सबसे महत्त्वपूर्ण बात है। आधुनिक गणित की लगभग सभी पाठ्यपुस्तकों में दोष यह है कि वे केवल अवधारणाएं सिखाती हैं, गणना के बिना ही। पहाड़े या लम्बे भाग जैसी उपयोगी गणितीय तकनीकों को या तो अनदेखा किया जाता है या अनिश्चित काल के लिए टाल दिया जाता है। नीलबाग में हम दोनों को साथ-साथ चलाने का प्रयत्न करते हैं। अवधारणा निर्माण पर बहुत बल दिया जाता है पर सामान्य गणना की तकनीकें भी साथ-साथ चलती हैं। बच्चों को ये तकनीकें, मसलन जोड़ एवं गुणा के तथ्य खेलों और गतिविधियों के माध्यम से सीखने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

इस वर्ष हमारा विचार है कि बड़े बच्चों को रिचर्ड स्कैंप की 'गणित को समझें' पुस्तक दे दें। यहां बच्चों से अपेक्षित है कि वे अपनी गति से आगे बढ़ें और पुस्तक को इस प्रकार पढ़ें कि वह 'स्व-अध्ययन' का औजार बन सके। छोटे बच्चे पहले ही 'ऑक्सफोर्ड मॉडर्न मैथेमेटिक्स' का प्रयोग कर रहे हैं। अपनी गति के अनुसार वे यही करते रहेंगे (इस वर्ष भी)। इस तरह गणित के दोनों समूह अब मिल जाएंगे।

विचार

हालांकि ज्यादातर कक्षाओं में जोर चिंतन एवं चिंतन रणनीतियां विकसित करने पर रहता ही है, फिर भी यह उपयुक्त ही होगा कि हर हफ्ते कुछ कालांश बच्चों को सोचना सिखाने के लिए रखे जाएं। इसका मतलब ध्यान आदि जैसी चीज से नहीं है- बल्कि इंगलैण्ड अमेरिका में चिंतन सीखने के लिए जो पाठ्यक्रम

निर्माण और कोर्स बनाने के प्रयत्न हुए हैं उनसे है। ज्यादातर शिक्षा तंत्रों में शिक्षाविदों का विचार है कि सामान्य पाठ्यक्रम में ही ऐसे कुछ विषय होते हैं जो इस (चिंतन की) दक्षता का यथेष्ट अभ्यास करवा देते हैं, पर यह संभावना कम ही लगती है। वर्तमान में एक ऐसा पाठ्यक्रम बनाया जा रहा है जिसमें मानव के चिंतन के विभिन्न स्वरूपों को सूचीबद्ध किया जाएगा, उन्हें सिखाने के तरीके ईजाद किए जाएंगे और इन दक्षताओं में अभ्यास के लिए लिखित सामग्री बनाई जाएगी। शुक्रवार दोपहर बाद का प्रश्नकाल इसकी शुरुआत है।

संगीत

नीलबाग में हमारे लिए संगीत शिक्षा का अभिन्न हिस्सा है। यह केवल सह-शैक्षणिक गतिविधि नहीं है, जिसे परीक्षाओं के दबाव बढ़ने पर जब चाहे तब निरस्त कर दिया जाए। समय-सारणी में संगीत को अंग्रेजी के अलावा सभी विषयों से अधिक समय दिया जाता है और इस व्यवस्था की सफलता प्रत्यक्ष रूप से सामने आई है। अब बच्चे 10 भाषाओं में 100 के करीब गाने गा लेते हैं। इससे उनमें ध्यान से सुनने की क्षमता विकसित हुई है। यही नहीं ध्यान केन्द्रित करना एवं अच्छे परिणाम की प्राप्ति के लिए अनुशासन लगाने की क्षमता भी विकसित हुई है। वे जल्दी ही नया गीत सीख पाने में और इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण यह कि इसे गाने में सक्षम हुए हैं। पिछले नवम्बर में उन बच्चों को रिकार्डर (अलगोजे जैसा वाद्य यंत्र) सिखाना आरंभ किया है जिनकी अंगुलियां इसे बजाने के लिए यथेष्ट लंबी हो गई हैं। (बहुत छोटे बच्चे रिकार्डर नहीं बजा सकते क्योंकि उनकी अंगुलियां उसके छेदों तक नहीं पहुंच पातीं। - सं.) आशा करते हैं कि भविष्य में रिकार्डरों और विभिन्न आघात-वाद्यों का एक आरकेस्ट्रा विकसित कर पाएंगे।

पिछली टर्म में यह तय किया गया कि एक पाक्षिक काव्य एवं संगीत संध्या का आयोजन किया जाए। यह आयोजन हमारे घर में (डेविड ऑसबरॉ का घर - सं.) ही रखा जाता है। बहुत छोटे बच्चों के अलावा सभी बच्चे, प्रशिक्षण स्कूल की छात्राएं एवं उस वक्त नीलबाग में ठहरे आगंतुक- सभी का संध्या में स्वागत होता है। कविताएं पढ़ी जाती हैं और भारतीय संगीत के रिकार्ड बजाए जाते हैं।

हस्तशिल्प

हस्तशिल्प, कला एवं कविता को शिक्षा का अभिन्न अंग माना जाता है। इनसे दक्षताओं का विकास होता है। शिक्षाक्रम के सभी विषयों में तालमेल बनता है तथा भावबोध एवं सौंदर्य-बोध का विकास होता है। यद्यपि हस्त-शिल्प के समूह

छोटे हैं (10 से 11 के बीच), लेकिन इनमें सभी आयु समूहों के बच्चों को शामिल किया जाता है। बच्चे पृथक परियोजनाओं पर काम करते हैं। अनेक प्रकार के हस्तशिल्प सिखाए जाते हैं जैसे कशीदाकारी, सुई का काम, कागज के काम, कोलाज, चित्रकारी, मिट्टी के मॉडल बनाना, मोनुकिरी, पेपर-मेशी, गुड़िया बनाना, कठपुतलियां बनाना इत्यादि। ऐसी आशा है कि इस साल हम लकड़ी के काम का एक प्रभाग शुरू करेंगे, जहां काष्ठ-शिल्प, नक्काशी और बढ़ईगिरी के अलावा धातुकर्म भी सिखाया जाएगा। कहना न होगा कि लिंग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होता है। लड़के कशीदाकारी का काम करते हैं और ठीक इसी तरह लड़कियां निस्संदेह लकड़ी एवं धातु के काम करेंगी। यदा-कदा बच्चे एक बड़े कोलाज अथवा भित्ति-चित्र का काम साथ-साथ करते हैं। मिट्टी का काम सिखाने के लिए एक पेशेवर कुम्हार और एक पोट्री शिक्षक हैं। चाक है तथा बिना गिलेज किए बर्तनों को पकाने के लिए एक छोटी भट्टी (आवा) भी है। इस वर्ष एक अधिक महत्त्वाकांक्षी भट्टी बनाने का विचार है जिसमें ग्लेज्ड बर्तनों को भी पकाया जा सके।

निर्माण कार्य

दो वर्ष पहले हमें एक और कक्षा कक्ष की जरूरत थी, अतः बच्चों ने अपने आप कक्ष बना लिया। इसकी आकृति यहां पारंपरिक रूप से 'सितुल्लू' कहे जाने वाले कक्ष जैसी है। यह एक गोल कमरा है जिसकी छत बीचों-बीच लगे खम्भे पर टिकी है। इसमें बच्चों ने (नींव के) पत्थर जमाएं, दीवारें बनाईं, आवश्यक लकड़ी का काम किया और छप्पर (घास-पत्तों की छत) बनाया। पिछले वर्ष इससे अधिक महत्त्वाकांक्षी निर्माण कार्य आरंभ किया गया- विज्ञान और हस्तकार्य के लिए एक कमरे का। यह काम जून तक पूरा कर लिया गया। इसको प्रशिक्षण स्कूल की छात्राओं, अनेक मित्रों एवं नीलबाग आने वाले अतिथियों की मदद से पूरा किया गया। इस कक्ष में चार खिड़कियां और एक दरवाजा है तथा इसकी छत खपरैल (टाइल्स) की है। एक और मौके पर पिछले वर्ष बच्चों ने एक अभिभावक के घर के पुराने छप्पर की जगह नया छप्पर लगाया।

निर्माण कार्य बहुत ही उत्तम गतिविधि है। इसमें सहयोग और समूह भावना की जरूरत होती है, यह प्रतिस्पर्धा की उस भावना को कतई बढ़ावा नहीं देती जो खेलों में जीतने के लिए आवश्यक होती है। निर्माण कार्य स्कूलों में प्रचलित प्रतिस्पर्धा वाले खेल का बहुत ही बढ़िया विकल्प है।

खेल

बच्चों द्वारा सामान्य तौर पर खेले जाने वाले, लुका छिपी जैसे, खेलों के अतिरिक्त अति प्रतिस्पर्धा वाले फुटबाल और हॉकी जैसे खेल यहां नहीं खेले जाते। बच्चों के पास एक जाल है, जिससे वे रिंग टेनिस और थ्रो बाल जैसे खेल खेलते हैं जिसमें प्रतिस्पर्धा के तत्व पर जोर नहीं दिया जाता। वे कबड्डी और खो-खो भी खेलते हैं।

बागवानी व कृषि

प्रत्येक बच्चे की एक छोटी क्यारी (6'X4') इसके अलावा एक थोड़ा बड़ा (200 वर्ग गज) भूभाग भी है, जिनमें वे अपनी पसंद के फूल लगाते हैं और सब्जियां उगाते हैं। यह एक सहयोगी उपक्रम होता है। सब्जियों को वे आपस में बांट लेते हैं। हमारे पास लगभग तीन एकड़ कृषि योग्य भूमि है, जहां हम विभिन्न प्रकार की स्थानीय फसलें उगाते हैं। हमारे स्कूल का छोटे होने तथा इसके ढीले किस्म के संघटन के कारण यह संभव है कि एक-दो दिन के लिए कक्षा को छोड़ बीज बोने, पौधे लगाने और फसल काटने के काम में लग जाएं।

नौकर

स्कूल में साफ-सफाई, झाड़-पोंछ और गिलास धोने के लिए नौकर की व्यवस्था नहीं है। यह काम बच्चों द्वारा ही किया जाता है। वे ही हर हफ्ते फर्श पर गोबर का लेप करते हैं। फर्श मिट्टी को कूट-कूटकर बनाया गया है। वे ही इसे सफेद रंगोली से सजाते हैं।

नीलबाग की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यहां इस भाव से बचा जाता है कि स्कूल आसपास के ग्रामीण जीवन से कटा हुआ है। उन बच्चों को शिक्षा या साक्षरता प्रदान करना जिनके अभिभावक साक्षर नहीं हैं, एक तरह का अलगाव बच्चों में पैदा करता ही है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि स्कूल आसपास के ग्रामीण जीवन से सघनता से जुड़ा नहीं हो सकता। इस संबंध का ठीक से निर्वाह नीलबाग में होता है जहां बच्चे आसपास के गांवों से आते हैं, कुछ बच्चों के अभिभावक यहां काम करते हैं और यहां के भवन आसपास के स्थानीय लोगों के मकानों से बहुत भिन्न नहीं हैं। वे अभिभावक जो नीलबाग में काम नहीं करते, अक्सर यहां आते रहते हैं या यहां के छात्र और शिक्षक इन अभिभावकों से मिलते रहते हैं। गांव में आयोजित होने वाले विभिन्न उत्सवों, शादियों और अन्य

सामाजिक गतिविधियों में नीलबाग को स्थानीय देहात का अभिन्न हिस्सा माना जाता है।

पिछले सत्र में हमने एक मीटिंग रखी। सभी माता-पिताओं के साथ यह हमारी पहली मीटिंग थी। इसमें प्रत्येक छात्र के माता-पिता में से कम से कम एक तो शामिल हुआ ही, अधिकांश बच्चों के माता-पिता दोनों ने ही भाग लिया। नीलबाग में उपस्थित हर वयस्क ने इसमें भाग लिया। एक घंटे की वार्ता आयोजित की गई जिनमें बच्चों के माता-पिता को नीलबाग में दी जा रही शिक्षा के दर्शन और उद्देश्य के विषय में जानकारी दी गई। उसके बाद एक सामान्य परिचर्चा हुई, जहां बहुत सारे अभिभावकों द्वारा सवाल पूछे गए। हम इसे हर सत्र की गतिविधियों का नियमित हिस्सा बनाना चाहते हैं।

पिछले सत्र में नीलबाग में एक और रोचक एवं अनूठा प्रयोग हुआ और वह है प्रौढ़ शिक्षा का प्रारंभ। बढ़ई, हॉस्टल में खाना पकाने वाली लड़की और एक अभिभावक ने निश्चय किया कि वे अंग्रेजी सीखना चाहेंगे। हमने उनसे प्रतिदिन साढ़े दस बजे आने और अंग्रेजी सीख रहे बच्चों की सामान्य कक्षाओं में होने को कहा। यह योजना सफल रही और बच्चों ने अभिभावकों को पढ़ने का अभ्यास, श्रुतलेख और लेखन की नकल उतारने में बहुत सहायता की। प्रौढ़ों ने तीन महीने में 'स्प्रिंग रीडर' की प्रारंभिक पुस्तक पूरी कर ली। धीरे-धीरे उत्साह जगा और प्रात:काल की कक्षाओं में और भी प्रौढ़ आने लगे, जिनमें तीन उपरोक्त प्रौढ़, तीन और स्त्रियां, गांव का एक लड़का जो एस.एस.एल.सी. में असफल रहा था, एक और लड़का जो इस वर्ष बी.ए. में प्रवेश नहीं पा सका। तीन और अभिभावकों ने पूछा है कि क्या वे 1977 के आरंभ से शामिल हो सकते हैं। इन प्रौढ़ों को ज्यादातर बच्चे ही पढ़ाते हैं और हमारा यह भय कि ऐसा करना कुछ न सुलझने वाली समस्याओं का कारण बन जाएगा, निर्मूल साबित हुआ। अभिभावक बच्चों द्वारा प्रसन्नतापूर्वक सहायता लेते हैं और यह सब मजे में चलता है। यह प्रयोग देश में आगे चलने वाले साक्षरता कार्यक्रमों में बच्चों की अधिक व्यापक भागीदारी का रास्ता दिखा सकता है।

नीलबाग आने वाले बहुत से लोग पूछते हैं कि इन बच्चों का शिक्षा पूरी होने पर क्या होगा? (अर्थात् ये क्या करेंगे?) सैद्धांतिक स्तर पर जवाब यह है कि हम नहीं जानते। एक धारणा को मानते हुए (और यह धारणा बहुत ही अक्खड़ धारणा है) यह कहा जा सकता है कि क्योंकि आज तक कोई शिक्षा प्रणाली ऐसी नहीं रही जो बच्चों का खास व्यवहार के लिए अनुकूलन न करती हो, अत: जो बच्चे ऐसी शिक्षा प्रणाली से निकलेंगे जो कि अनुकूलन पर आधारित

नहीं है, उनके बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि वे कैसे होंगे। यह आशा की जा सकती है कि वे सही मायनों में क्रांतिकारी होंगे, कि वे वर्तमान समाज को बदलने का प्रयास किए बिना न तो इसके अनुरूप ढलना चाहेंगे और न ही ढल पाएंगे। एक अधिक रोचक स्तर पर कहा जा सकता है कि चार वर्ष बाद, अब इसमें संदेह नहीं है कि बच्चों का उपलब्धि स्तर सामान्य स्कूलों से काफी ऊंचा है। और हालांकि आंतरिक रूप से हम कोई परीक्षा आदि नहीं लेते पर जो बच्चे सार्वजनिक परीक्षाओं (सैकेण्डरी आदि) में बैठना चाहते हैं, उन्हें ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। आशा करते हैं कि हम शैक्षणिक स्तर को इतना ऊंचा कर पाएंगे कि परीक्षा पास करना कोई समस्या नहीं रह जाएगी, जैसा कि यह अन्य स्कूलों में है। यह एक ऐसी समस्या है जो अन्य स्कूलों में अन्तिम दो तीन वर्ष की पूरी शिक्षा को ही परीक्षाभिमुख बनाने पर बाध्य कर देती है। दूसरी तरफ सभी बच्चे तो आगे अकादमिक पढ़ाई नहीं करना चाहेंगे, या नहीं कर पाएंगे। नीलबाग में शिक्षाक्रम की गहराई और गतिविधियों की विविधता के कारण इन बच्चों को शिक्षा के कुछ सुफल तो मिलेंगे ही, चाहे वे बड़े होकर कुछ भी करें।

प्रशिक्षण स्कूल

वर्तमान (नीलबाग) स्कूल की प्रणाली की स्पष्ट सफलता, और सरलता व आनन्द, जो यहां बच्चे के सीखने में साफ तौर पर परिलक्षित होते हैं, वे कारण रहे हैं जिनसे यह विचार पनपा कि ऐसे शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाए जो समान प्रणाली पर आधारित स्कूल चला सकें। नीलबाग की एक आलोचना यह की जाती है कि शिक्षकों का अनुपात बहुत अधिक है, कि शिक्षक बहुत अनुभवी हैं। बहुधा यह टिप्पणी की जाती है कि जो प्रणाली नीलबाग में इतनी सफल है वह 'साधारण शिक्षकों' के हाथ में बिल्कुल ही नहीं चल पाएगी। अत: प्रशिक्षण स्कूल का एक प्रमुख उद्देश्य ऐसे 'साधारण शिक्षकों' का प्रशिक्षण करना है जो समान प्रणाली पर आधारित स्कूल अपने बलबूते पर चला सकें। यह अपेक्षा नहीं है कि नीलबाग में प्रशिक्षित शिक्षक सामान्य शिक्षा तंत्र में काम करेंगे, हालांकि यह है कि यदि वे ऐसा करते हैं तो खूब सफल रहेंगे। आशा यह है कि प्रशिक्षण के बाद ये शिक्षक छोटे स्कूलों में काम करेंगे, ऐसे स्कूल जो निजी तौर पर अनुदानित हों, सरकारी अनुदान से स्वतंत्र हों और जो मुख्यत: वंचित बच्चों के लाभ के लिए चलाए जा रहे हों। ऐसा नहीं लगता है कि इस प्रकार के स्कूलों के

लिए धन जुटाना कोई बहुत कठिन काम होगा। भारत में बहुत लोग मिल जाएंगे जो ऐसे स्कूल या तो आरंभ करना चाहेंगे या उन्हें अनुदान देने को तैयार होंगे। जून 1977 में ऐसे दो स्कूल आरंभ होने वाले हैं, एक कर्नाटक में और एक राजस्थान में। कर्नाटक में आरंभ होने वाला स्कूल कई संस्थानों और निजी संस्थानों से अनुदानित होगा। और राजस्थान में आरंभ किए जाने वाला स्कूल पूरी तरह से निजी सहायता पर आधारित होगा। नीलबाग में प्रशिक्षण की विधि सामान्य प्रशिक्षण संस्थानों की प्रशिक्षण-विधि से उतनी ही भिन्न है जितनी कि नीलबाग स्कूल की शिक्षण-विधि सामान्य स्कूलों की शिक्षण-विधि से भिन्न है। प्रशिक्षण स्कूल का मूलभूत दर्शन संक्षेप में कहें तो यह है— ऐसा माहौल बनाना जिसमें युवा लोग (बच्चों को) पढ़ाना सीख सकें। ऐसे माहौल में ये सब शामिल होगा— आरामदायक और प्रीतिकार रहन-सहन की सुविधा, बच्चों का रोज का और नजदीकी साथ, नियमित कक्षा-अवलोकन और शिक्षण अभ्यास जो संपूर्ण प्रशिक्षण में चले, एक अच्छा पुस्तकालय, सीखने के नए अनुभवों की प्रचुरता, खूब सारा हस्तकार्य, व्यवहारिक कार्य तथा अनुभवी शिक्षकों के साथ सेमिनार एवं चर्चाएं।

दूसरे शब्दों में जोर इस बात पर है कि प्रशिक्षु सीखें कि पढ़ाया कैसे जाता है न कि इस पर कि प्रशिक्षक उन्हें पढ़ाना सिखाए। इस प्रकार के कार्यक्रम के लिए कुछ आरंभिक अभिप्रेरण आवश्यक है। एक बार यह आरंभिक अभिप्रेरण सुनिश्चित होने पर विविध गतिविधियों एवं आरंभ से ही बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में भागीदारी की भावना के आधार पर इसे बनाए रखना आसान है। सफलता भी एक बड़ा अभिप्रेरक है। जब प्रशिक्षु धीरे-धीरे यह समझने लगते हैं कि विभिन्न शिक्षण विधाएं किस तरह आपस में गुंथी हुई हैं और बच्चों से संबंध बनाने, कक्षाओं के संचालन एवं आधुनिक शिक्षण-विधियों में अपनी सतत् बढ़ती क्षमताओं का अनुभव करते हैं तो उनकी प्रेरणा भी अधिक बलवती होती जाती है। प्रत्येक प्रशिक्षु कम से कम एक या दो कालांश कक्षाओं में रोज बिताता है। इसके अलावा एक कालांश कार्यशाला (हस्तकार्य के लिए) में होता है। बाकी बचा समय छात्रावास में पुस्तकालय में होते हैं। वहां वे अपने असाइनमेंट्स पूरे करते हैं तथा अध्ययन और अन्य कार्य करते हैं। सप्ताह में दो गोष्ठियां होती हैं और कोई व्याख्यान नहीं होते।

इस प्रकार संपूर्ण कोर्स का मुख्य काम चार मूल गतिविधियों में बंट जाता है—

1. कक्षा-अवलोकन और शिक्षण अभ्यास
2. हस्तकार्य और बढ़ईगिरी
3. व्यावहारिक कार्य (सुलेख, श्यामपट्ट पर अभ्यास, अंग्रेजी की लिपि का ध्वन्यात्मक अभ्यास आदि)
4. अध्ययन, असाइनमेंट्स और परिचर्चाएं।

1. कक्षा-अवलोकन एवं शिक्षण अभ्यास

हमें लगता है कि भारत एवं पश्चिम में, दोनों ही जगह पर, शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों का एक प्रमुख दोष उनमें शिक्षण अभ्यास की व्यवस्था को लेकर है। अधिकतर शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रमों में सत्र सिद्धांत और शिक्षण-विधियों पर व्याख्यानों से आरंभ होता है जिनमें प्रशिक्षु को चुपचाप सुनने के अलावा कुछ नहीं करना पड़ता, बस थोड़ा-बहुत नोट्स लेना पड़ सकता है। इस के अलावा पड़ोस के विद्यालय में पढ़ाता है। सामान्यतया यह पाठ पढ़ाना उस सत्र का सैद्धांतिक काम हो जाने पर ही किया जाता है। स्वाभाविक है कि इन बहुत ध्यान से तैयार पाठों का, जो सामान्यतया किसी ट्यूटर की निगरानी में पढ़ाए जाते हैं, कक्षा में सामान्यतया चलने वाले क्रियाकलापों से बहुत कम संबंध होता है या फिर बिल्कुल भी नहीं होता। प्रशिक्षु द्वारा पढ़ाया गया पाठ या तो एक व्याख्यान होकर रह जाता है या हद से हद शिक्षण का प्रदर्शन भर बन पाता है। यदि हम शिक्षण की दक्षता विकसित करना चाहते हैं और शिक्षण के मुख्य मायने बच्चों की सीखने में मदद कर पाना है तो इन भावी शिक्षकों के साथ कक्षाओं में प्रतिदिन काफी समय देना चाहिए, जहां वे अवलोकन करें, आत्मसात करें और अन्त में कक्षा-शिक्षक से शिक्षण का काम अपने हाथ में ले लें। नीलबाग में इस सबका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक प्रशिक्षु रोज कक्षा में कम से कम डेढ़ घंटा बिताता है, आरंभ में कक्षा में जो कुछ चल रहा होता है उसका अवलोकन करते हुए। कुछ समय बाद यह प्रशिक्षु शिक्षक एक या दो बच्चों को संभालता है या तो शिक्षण दक्षताओं के अभ्यास के लिए या उन बच्चों के काम में संशोधन के लिए। नीलबाग में जहां बच्चे अपनी गति से एवं बहुत छोटे समूहों में काम करते हैं यह व्यवस्था बहुत आसान हो जाती है। इस तरह प्रशिक्षु न केवल स्कूल के सभी बच्चों से रिश्ते बना पाता है बल्कि धीरे-धीरे बच्चों को सीखने में लगा पाने की तकनीकें भी विकसित कर लेता है। हर प्रशिक्षु एक-एक सप्ताह के लिए अलग-अलग विषयों के कालांशों में जाता है, जिससे कि विभिन्न विषयों में शिक्षण का अनुभव मिल सके। इस तरह हर प्रशिक्षु संपूर्ण कोर्स के दौरान कम से कम 700 घंटे का शिक्षण एवं अभ्यास करता है।

2. *हस्तकार्य*

नीलबाग विद्यालय में हस्तकार्य की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। हस्तकार्य के अध्ययन से ही बच्चे नई दक्षताएं सीखते हैं। नई समस्याओं से जूझते हैं और साथ ही रचनात्मक एव आनंददायक कार्यों में संलग्न होते हैं। इन्हीं कारणों से शिक्षण प्रशिक्षण में भी हस्तकार्य महती भूमिका निभाता है। प्रतिदिन कम से कम एक या डेढ़ घंटा हस्तकार्य को दिया जाता है। प्रशिक्षुओं का विभिन्न दस्तकारियों से परिचय करवाया जाता है, जिनमें खिलौने बनाना और लकड़ी का काम, कागज का काम एवं पुस्तकें बनाना, पेंटिंग और ड्राइंग, पेपरमेशी और कई सहयोगी हस्तकार्य होते हैं। प्रथम तीन माह मूल दक्षताओं के सीखने में लगाए जाते हैं। कोर्स का बाकी समय शिक्षण और खेल के लिए विविध उपकरण बनाने में लगता है। ये उपकरण प्रशिक्षु कोर्स पूरा होने पर अपने साथ ले जा सकते हैं और स्वयं पढ़ाना आरंभ करने पर उनका उपयोग कर सकते हैं। इस प्रकार प्रशिक्षुओं को भी बच्चों की तरह ही नए अनुभव दिए जाते हैं तथा नई समस्याओं के समाधान के लिए कहा जाता है। नई दक्षताएं सीखने के माध्यम से प्रशिक्षु नई दक्षताएं सीखने में बच्चे को आने वाली कठिनाइयों के बारे में एक गहरी अंतर्दृष्टि प्राप्त करते हैं।

3. *व्यावहारिक कार्य*

व्यावहारिक कार्य के अंतर्गत नीलबाग में कई चीजें आती हैं। प्रत्येक प्रशिक्षु रोज कम से कम एक घंटा इस काम में लगाता है और इसमें भी पहले तीन माह मूल दक्षताओं के विकास में लगाए जाते हैं। इसमें कागज और बोर्ड पर सुलेख का अभ्यास होता है, ब्लैक-बोर्ड का उपयोग और ब्लैक-बोर्ड पर चित्र बनाना सिखाया जाता है, ट्रेसिंग और किसी चित्र की बड़ी प्रतिलिपि बनाना सीखा जाता है, तथा दृश्य सहायक शिक्षण सामग्री (मैचिंग कार्ड्स, फ्लैश कार्ड्स आदि) बनाना सीखा जाता है।

4. *अध्ययन एवं असाइनमेंट लिखना*

यह कोर्स के सैद्धांतिक हिस्से का केन्द्रीय बिंदु है। प्रशिक्षु संभवतया तीन घंटे या इससे कुछ अधिक समय रोज पढ़ने एवं असाइनमेंट लिखने में लगाते हैं। सैद्धांतिक पक्ष का मुख्य हिस्सा शिक्षा दर्शन और शिक्षा का इतिहास, समाज शास्त्र, मनोविज्ञान और शिक्षण-विधा दो तरह से सीखा जाता है। पहले वर्ष में प्रशिक्षु से यह अपेक्षा रहती है कि एक सप्ताह में वह चार असाइनमेंट्स पूरे करे।

इन असाइनमेंट्स में शिक्षा से जुड़े विभिन्न विषयों पर लगभग पूरे पृष्ठ की सामग्री होती है। प्रत्येक असाइनमेंट शीट के लिए दो तरह के प्रश्न होते हैं। एक तरह के प्रश्न वे जिनका उत्तर लिखकर देना होता है। ये जांचने के लिए होते हैं कि प्रशिक्षु ने गद्यांश को कितना समझा है, जो प्रशिक्षु के अपने अनुभवों (उदाहरण के लिए उसका अपना स्कूल) से गद्यांश की मुख्य बातों का संबंध बैठाने के लिए होते हैं और एक-दो अनुच्छेद में उत्तर की अपेक्षा रखने वाले ऐसे प्रश्न होते हैं जिनमें या तो प्रशिक्षु को अपना मत देना पड़े या कल्पना से काम लेना पड़े या फिर संदर्भ पुस्तकें देखनी पड़ें। दूसरी प्रकार के प्रश्नों में चर्चा के लिए बिंदु होते हैं। प्रत्येक बुधवार और शनिवार को इन असाइनमेंट्स पर चर्चा होती है। चर्चा गोष्ठियों में होती है, ये गोष्ठियां दो घंटे चलती हैं।

असाइनमेंट्स के अलावा प्रशिक्षुओं से अपेक्षा होती है कि वे कम से कम दो घंटे रोज पढ़ें। कुछ पुस्तकें तो बहुत गहन अध्ययन के लिए निर्धारित हैं, जिनमें शायद एक सप्ताह में एक ही अध्याय पढ़ा जाता है। इन पुस्तकों को पढ़ने में प्रशिक्षु से अपेक्षा होती है कि प्रत्येक अध्याय का सार संक्षेप में लिखें तथा समस्याओं को गोष्ठियों में चर्चा के लिए लिखकर रखें। इसके अलावा प्रति सप्ताह एक चयनित पुस्तक दी जाती है जिसे पढ़ना होता है तथा किसी एक गोष्ठी में इस पर चर्चा होती है।

शिक्षा पर आधुनिक लेखकों की पुस्तकों वाला एक विस्तृत पुस्तकालय भी है जिसमें प्रशिक्षुओं से पृष्ठ पलटते रहने की अपेक्षा रहती है।

प्रशिक्षुओं की समय-सारणी

8.00 से 8.30 अध्ययन कालांश

प्रशिक्षण विद्यालय के छात्र भारत के विभिन्न हिस्सों से आए हैं और विभिन्न भाषा-भाषी हैं। इस अध्ययन कालांश का कुछ समय तो संस्कृत सीखने को दिया जाता है और कुछ आधुनिक भारतीय भाषा सीखने को। प्रत्येक सुबह एक छात्रा अपनी भाषा अन्य छात्रों को पढ़ाती है। वर्तमान कोर्स में कन्नड़, बंगाली और तेलुगु भाषाएं सीखी गई हैं। इससे सही मायने में साथियों को पढ़ाने का अवसर मिलता है क्योंकि सीखने वाले छात्र कुछ नया सीख रहे होते हैं। अत: सिखाने वाला व सीखने वाला दोनों पक्षों को खूब लाभ होता है क्योंकि खूब खुली चर्चाएं होती हैं। अत: पाठ पर एवं पढ़ाने की विधियों पर बिना किसी प्रकार की झेंप आदि से स्पष्ट टिप्पणियां संभव हो पाती हैं। शिक्षकों को श्यामपट्ट

एवं बहुत से अन्य दृश्य सहायक उपकरणों के प्रयोग के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इस प्रकार की पढ़ाई के दूसरे वर्ष में भाषा की लिपि सिखाना आरंभ करते हैं। स्वयं एक अपरिचित लिपि सीखने के माध्यम से प्रशिक्षु बच्चों को लिपि सीखने में आने वाली कठिनाइय्रों एवं शिक्षक को लिपि सिखाने में आने वाली कठिनाइयों के बारे में अंतर्दृष्टि प्राप्त करते हैं।

8.45 से 9.30 सभा

प्रशिक्षणार्थियों से आशा की जाती है कि वे सभा शुरू होने के 15 मिनट पूर्व उपस्थित रहें, बच्चों के साथ खेलें और क्लासरूम को व्यवस्थित करने में मदद करें। इसके बाद वे गायन और संस्कृत श्लोकों के कालांश में उपस्थित रहें। पाठ्यक्रम के अंत में उनसे अपेक्षा की जाती है कि नीलबाग में सिखाए गए प्रत्येक गीत को वे गा सकें।

9.30 से 10.45 कक्षा कालांश

नीलबाग में एक बार छह से अधिक प्रशिक्षणार्थियों को प्रशिक्षण नहीं दिया जाता। टाइम टेबल में वर्णित कक्षा कालांश में वे तरह-तरह की गतिविधियां करते हैं। उनमें से एक या दो तो स्कूल के शिक्षक के साथ बैठते हैं और देखते हैं कि वह कैसे पढ़ाता है। एक मिट्टी के बर्तन बनाने वाले शेड पर जाता है और ऐसे ही एक दस्तकारी के कक्ष में जाता है। शेष छात्रावास के पुस्तकालय में काम करते हैं।

10.45 से 11	*अन्तराल*
11 से 12.30	*कक्षा*
2 से 3	*कक्षा*
3 से 4	*कक्षा*

4 से 5 विभिन्न गतिविधियां

इस कालांश में कुछ विद्यार्थी बच्चों की निर्माण कला या बागवानी में सहायता करते हैं, कभी वे मिट्टी के बर्तन बनाने के कक्ष में जाते हैं या कभी छात्रावास में चले जाते हैं।

5 से 6 खाली समय

प्रशिक्षणार्थियों से अपेक्षा होती है कि वे अपना पढ़ने व असाइनमेंट्स का काम छात्रावास में करें।

8 बजे बाद - खाली समय

प्रशिक्षण का सातत्य

आवासीय पाठ्यक्रम पूरा होने तक पाठ्यक्रम के अंत में प्रशिक्षु लगभग दो साल नीलबाग में गुजार चुके होते हैं। पर इसका मतलब यह नहीं है कि उनका प्रशिक्षण-काल पूरा हो जाता है। उनका प्रशिक्षण अगले तीन सालों तक और चलता रह सकता है। इन तीन सालों में प्रशिक्षणार्थी अपना स्कूल चला रहे होंगे और उनमें पढ़ा रहे होंगे लेकिन उन्हें अभी भी प्रशिक्षणार्थी ही माना जाएगा। उनसे मासिक दिए जाने वाले कार्य और दूसरे लिखित काम पूरा करने के साथ साथ काफी मात्रा में अध्ययन की भी अपेक्षा की जाती है। इसके अलावा संभव हुआ तो एक मासिक समाचार पत्रिका भी प्रकाशित की जाएगी जिससे सारे समूह के अलग-अलग शिक्षकों को आई समस्याओं और उनके संभावित हलों की जानकारी मिलेगी। उनके संभावित निदानों पर भी चर्चा की जाती है। आने वाले समय में नीलबाग में साल में दो सेमीनार होंगे, जब नए शिक्षक दो या तीन हफ्ते के लिए नीलबाग आएंगे, सामान्य समस्याओं पर विचार-विमर्श करेंगे और अपने अनुभव बाटेंगे।

यह किसी भी प्रशिक्षण कार्यक्रम का अहम हिस्सा होना चाहिए। प्रशिक्षणार्थी को प्रशिक्षण प्राप्त कर लेने के बाद भी यह महसूस होना चाहिए कि प्रशिक्षण संस्थान उसकी हर तरह से सहायता करने को उपलब्ध हैं, कि जब समस्या का कोई हल न नजर आए तो समूह के अन्य सदस्यों या प्रशिक्षण संस्थान से सहारा मिल सकता है। जाहिर है कि इस प्रक्रिया में संस्थान का भी हित होगा। पत्राचार और आगमन से मिलने वाले नियमित फीडबैक से यह सुनिश्चित हो सकेगा कि बाद में पाठ्यक्रम बदले जा सकें ताकि अतीत में की गई गलतियों से बचा जा सके और भविष्य में आने वाली समस्याओं पर काबू पाया जा सके।

सघन कोर्स

पिछले साल एक अंग्रेजी माध्यम वाले निजी स्कूल के प्रधानाध्यापक ने सलाह दी कि चूंकि ऊंचे सुप्रेरित योग्य शिक्षकों का अभाव है, अतः उनके स्कूल से पास होने वाले एक-आध सुयोग्य छात्र को उसी स्कूल में पढ़ाने के लिए प्रेरित किया जाए। ऐसा सोचा गया कि स्कूल से अभी निकले छात्र को बिना प्रशिक्षण प्राप्त

किए पढ़ाने में असंख्य कठिनाइयां आएंगी। अत: यहां कई गोष्ठियों में इस प्रकार के प्रशिक्षण के लिए एक छोटा सघन कोर्स विकसित किया गया है। यह पाठ्यक्रम एक सप्ताह का होगा जिसमें प्रशिक्षु को शिक्षा दर्शन और शिक्षा मनोविज्ञान से परिचित करवाया जाएगा, और साथ ही पढ़ाने के तरीके तथा विभिन्न आवश्यक व्यावहारिक दक्षता से भी परिचय करवाया जाएगा। उसके बाद प्रशिक्षणार्थी अपने स्कूल लौट जाएगा और पढ़ाना शुरू कर देगा, लेकिन एक साल तक पत्राचार पाठ्यक्रम से जुड़ा रहेगा। इस कोर्स के हर पहलू का काम नीलबाग में दो वर्ष प्रशिक्षण प्राप्त कोई शिक्षक देखेगा और आशा है कि वर्ष के अंत तक यह स्कूल से निकला छात्र वह ज्ञान और तकनीकें हासिल कर सकेगा जिससे अपने आप पढ़ाना सीखता रहे।

पत्राचार पाठ्यक्रम

नीलबाग स्कूल और प्रशिक्षण संस्थान के अतिरिक्त इस साल हमने कुछ व्यक्तिगत पत्राचार पाठ्यक्रम शुरू किए हैं। दो लड़कियों ने, जो और अधिक अंग्रेजी सीखना चाहती थीं, हमसे सहायता की प्रार्थना की। अब वे अपने गांवों में डी.एच. होव की 'एक्टिव इंगलिश' पढ़ रही हैं और हर हफ्ते शोधन के लिए अपना काम भेज रही हैं। इससे प्रेरित होकर 'हिन्दू' अखबार में एक लेख छपा जिसका काफी स्वागत किया गया। बहुत सारे लोगों ने भावी शिक्षक होने की इच्छा प्रकट की और बहुत सारे छात्रों ने पत्र लिखे जो किसी प्रकार की सहायता चाहते थे। हम शिक्षक से विद्यार्थी का संपर्क करवा देते हैं। समय बीतने पर देखने की कोशिश करेंगे कि ये कार्यक्रम कैसा चल रहा है। वर्तमान में यह कार्यक्रम केवल अंग्रेजी तक ही सीमित है, पर संभावित शिक्षकों में अन्य विषयों में उन्नत योग्यता वाले लोग भी हैं, अत: आशा है भविष्य में विषयों का दायरा फैलेगा।

अनुवाद : आनंद मोदीका

डेविड की कविताएं

पतंग

मेरे पास थी एक पतंग
चटख लाल रंग की पतंग
उड़ती थी चिड़िया की तरह
आसमान में
पक्की डोर के बूते पर।
तेज हवा के बावजूद
ऊपर उठती ही जाती थी पतंग।

पक्की थी डोर
और हवा बहुत तेज थी
पर दूर उड़ती ही चली गई पतंग
विदा लाल पतंग!
अलविदा, प्यारी पतंग!
लौटकर आना जरूर एक दिन
मेरी प्यारी-सी लाल पतंग!

एक महीना ही बीता था,
बैठा था मैं एक दिन
बैठे-बैठे ही सपने में देखी

मैंने वैसी ही प्यारी सी पतंग

और तभी जैसे नीले कच्च
आसमान से टपक पड़ी
मेरे पैरों के पास
वह पतंग मेरी पतंग।

खुशी से चिल्ला उठा
तुम लौट ही आई आखिर
ओ मेरी मित्र
अब मेरे साथ ही रहना
बरसों-बरस
अब फिर उड़ कर
मत चली जाना ओ मेरी पतंग!
मेरी प्यारी-सी लाल पतंग!

विरासत पेड़ों की

आज मैंने देखा
पेड़ पर हमला बोलता एक आदमी
आहत करता उसे।

बीस मील तक चलते चले जाओ
मैसूर-ऊटी मार्ग पर
देखोगे वहां
दुखी-द्रवित कर देने वाला नजारा
सचमुच की दुखांतिका।

दिखेगी कतार पेड़ों की
उदारमना पेड़ों की
क्षत-विक्षत
असमय ही उनके तलों से विच्छिन्न कर दी गईं शाखें

उघड़े पड़े हों जैसे घाव
उनके तले भी तो जख्मी हैं
चीरफाड़ के शिकार
झेलते यंत्रणा चिरने की।

कुछ हैं जीवित
विनत से, विकलांग।
और कुछ तो
हो गए हैं दिवंगत।

उनका बहिरंग काला पड़ गया है
सूरज की गर्मी से, या ताप से
उनके खुरंड
और पपड़ाए घावों के विशाल
ला-मरम्मत हैं पूरी तरह से।

ये पेड़
ये चित्ताकर्षक उदारमना पेड़
रोपे होंगे कभी
बहुत बहुत पहले
अपने कोमल-मृदु हाथों से
किसी इस्माइल ने
किसी विश्वेश्वरैया ने
या किसी गुमनाम महामना ने
यह भी तो संभव है
रोपे गए हों ये शाही संरक्षण में।

कैसा हो यदि वे आ जाएं
शांत शीतल विश्राम स्थलों से निकलकर
डालने को फिर से एक नजर
अपनी कृतियों पर
अपने जीवन भर के काम पर

लोगों की बहबूदी के लिए
रोपे गए पेड़ों पर?

अब सब करें इनका भोग
बोटी-बोटी कर दें अलग,
टुकड़ों में काट दें इन्हें
ताकि गांव भर का भोजन
पकाने वाली आग
ज्यादा गरम ज्यादा तेज
बनी रह सके।

पेड़ हमारी विरासत हैं
और कितनी पवित्र है
इनकी राख!

रूपांतर : डॉ. मोहन श्रोत्रिय

डेविड के रेखाचित्र
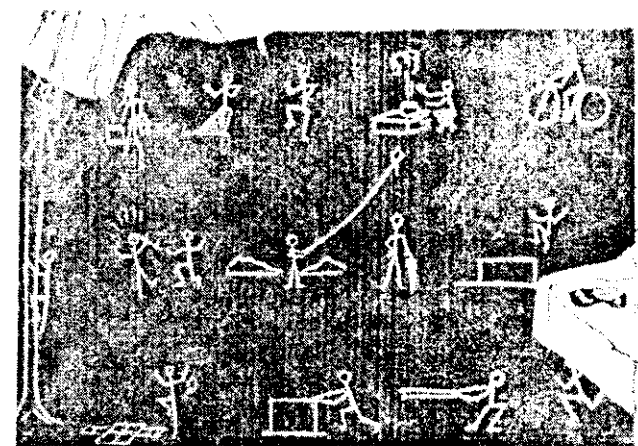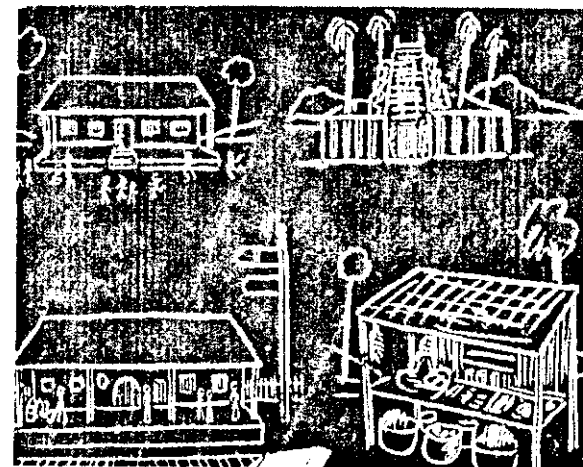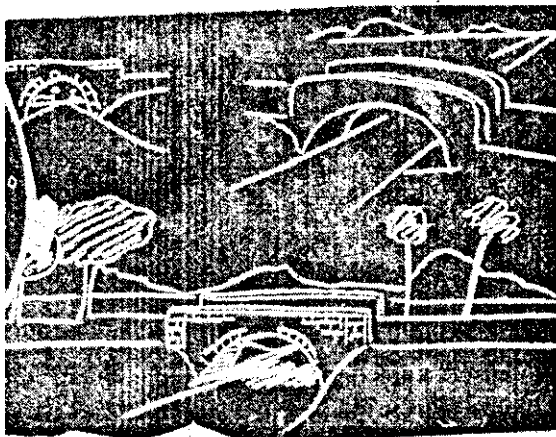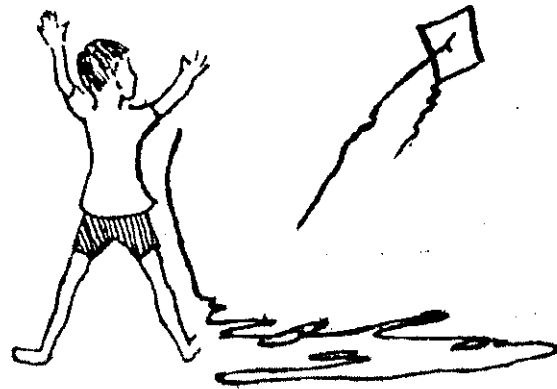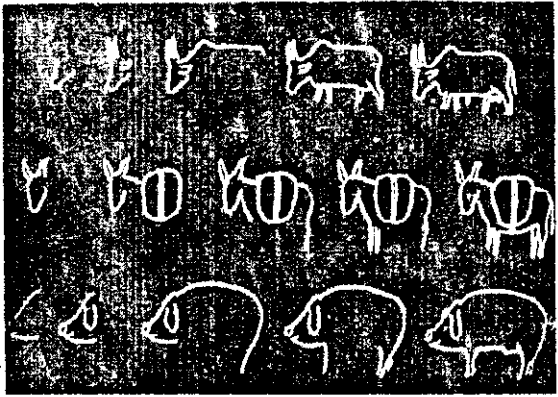
Aunt Jane gave
him
a chicken.
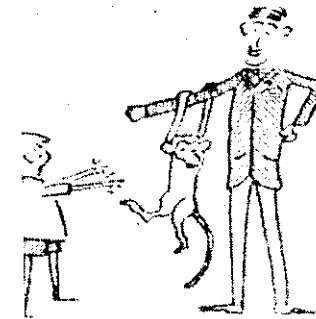
Uncle George
gave
him
a
monkey.

And Aunt Peggy
gave
him
a duck.

चित्रांकन : डेविड ऑसबरां
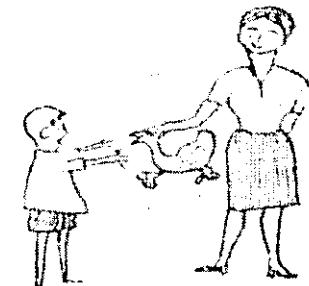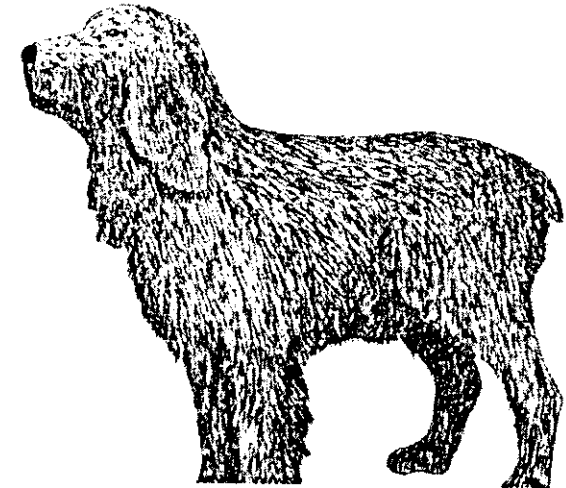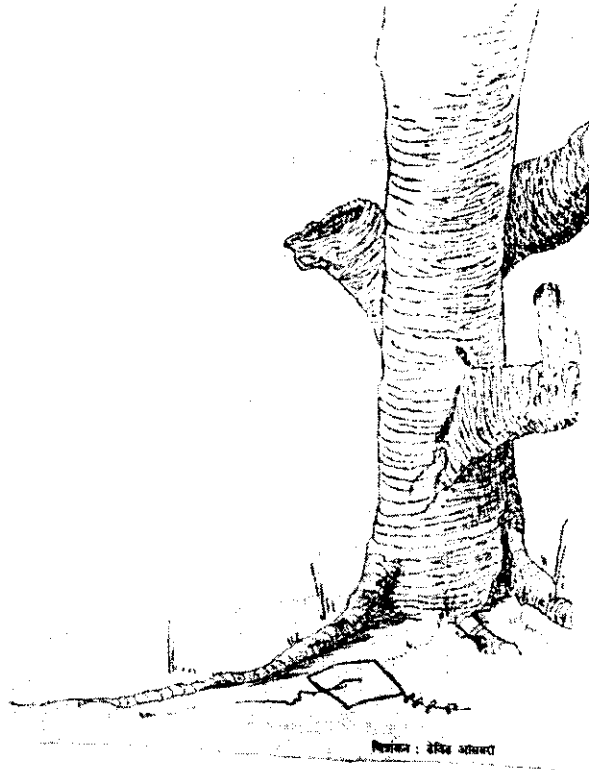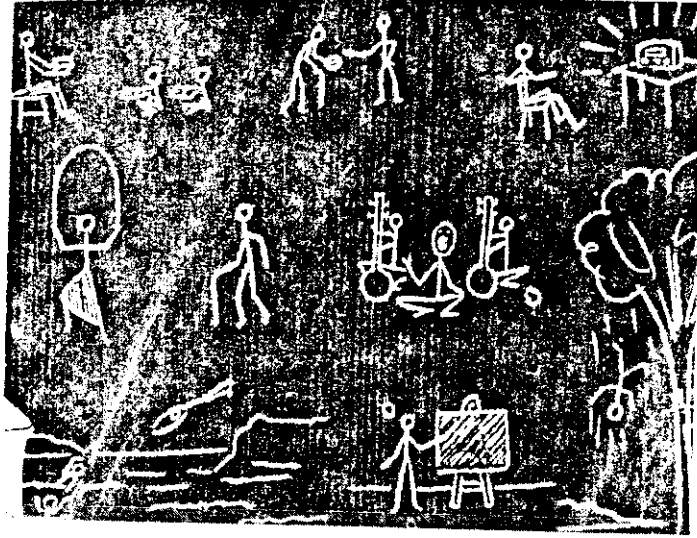
नीलबाग ट्रस्ट

नीलबाग ट्रस्ट का पंजीकरण 1974 में एक परोपकारी शैक्षणिक ट्रस्ट के रूप में हुआ था। और इस तरह 1984 में इसके अस्तित्व का एक दशक पूरा हो गया। उसी वर्ष 8 अगस्त को ट्रस्ट के संस्थापक व प्रबंध ट्रस्टी डेविड ऑसबरॉ का बंगलौर में निधन हो गया। यह न केवल नीलबाग ट्रस्ट के लिए बल्कि संपूर्ण शिक्षा जगत के लिए बहुत बड़ी हानि थी। उनकी कमी बहुत अखरती है।

डेविड ऑसबरॉ अपने जीवनकाल के अंतिम वर्ष में राष्ट्रीय शिक्षक आयोग में हो रहे कार्य से बहुत गहराई से जुड़े थे। वे तब पुस्तकें (जिनसे होने वाली आय से स्कूलों का खर्चा चलता है) लिखने में व्यस्त होने के साथ-साथ कई अन्य कामों में संलग्न थे। इसी दौरान उनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया और अंत में एक महीना अस्पताल में बिताने के बाद, वे यह संसार छोड़कर चले गए।

यह लाजिमी था कि उनकी बीमारी के दौरान तथा राष्ट्रीय आयोग के साथ कार्य करने की व्यस्तता के कारण, नीलबाग ट्रस्ट से संबंधित कुछ प्रशासनिक मुद्दों से या तो उनका ध्यान हट गया या उन पर कोई कार्यवाही नहीं हो पाई।

ट्रस्ट की कानूनी व वित्तीय स्थिति का समाधान करने में सात महीने लग गए। इस अवधि में हमें वकीलों व लेखाकारों के साथ विचार-विमर्श करने के लिए बंगलौर के कई दौरे करने पड़े तथा विभिन्न सरकारी विभागों के साथ काफी पत्र व्यवहार भी करना पड़ा। मुझे यह कहते हुए खुशी हो रही है कि आखिरकार चीजें साफ हो गई तथा ट्रस्ट का कार्य बिना किसी अवरोध के चलना सुनिश्चित हो गया है।

नीलबाग स्कूल

बच्चे

पिछले कुछ वर्षों से स्कूल संतोषजनक ढंग से चल रहा है। अपने जीवन के 12 वर्ष पूरे कर लेने के बाद स्कूल में ऐसे बच्चे हैं जिनकी उम्र स्कूल छोड़ने लायक है। 1984-85 में तीन नए बच्चों ने स्कूल में प्रवेश लिया। इन्हें मिलाकर कुल संख्या अब 25 हो गई है। इनमें 12 लड़के और 13 लड़कियां हैं। इस स्कूल में सबसे कम उम्र का बच्चा टिमॉथी (3 वर्ष) तथा बड़ी उम्र की छात्रा लक्ष्मी देवी (21 वर्ष) है।

दो बच्चों ने स्कूल छोड़ दिया है और वे दोनों ही लड़किया हैं। एक को अपनी मां की असमर्थता के कारण घर व खेती के काम की जिम्मेदारी संभालनी पड़ी, जबकि दूसरी की शादी हो गई। शादीशुदा लड़की पिछले दो वर्ष से डिस्पेंसरी में पेनी की मदद करने के साथ-साथ स्कूल में पार्ट टाइम पढ़ाई भी कर रही है।

नवंबर 1984 में चार छात्रों ने आंध्र प्रदेश बोर्ड से सैकेण्डरी स्कूल सर्टिफिकेट (एस.एस.सी.) की परीक्षा दी जबकि एक छात्रा ने बी.ए. प्रथम वर्ष तथा दो छात्रों ने बी.ए. द्वितीय वर्ष की परीक्षा दी। बी.ए. की परीक्षाएं बी.टी. कॉलेज, मदनापल्ली में होती हैं तथा वैंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति प्रश्नपत्र तैयार करता है। ये सभी छात्र-छात्राएं (प्राइवेट) परीक्षार्थियों के रूप में सम्मिलित होते हैं।

एस.ए.ए.सी. परीक्षा देने वाले चार लड़कों (ये पहली बार किसी परीक्षा में बैठे थे) में से तीन पास हुए जिनमें एक को प्रथम श्रेणी तथा दो को द्वितीय श्रेणी मिली, चौथा छात्र दो प्रश्नपत्रों में अनुत्तीर्ण रहा तथा वह अप्रैल 1985 में दुबारा परीक्षा दे रहा है। एक विद्यार्थी, प्रसाद, जिसने 1983 में बी.ए. करने के बाद स्कूल छोड़ दिया था, पिछले साल से दिल्ली के पास एक एस.ओ.एस. ग्राम में कार्य कर रहा है। उसे हाल ही में एक्शन एड नामक बाल प्रायोजक संगठन ने अपने द्वारा चलाई जा रही कई विकास योजनाओं मं से एक में प्रोजेक्ट अधिकारी की नौकरी का प्रस्ताव दिया था। उसने 1 अप्रैल स यह काम शुरू कर दिया है।

मार्च 1984 में एस.एस.सी. पास करने वाली छात्रा संपूर्णा को इंटरमीडिएट साइंस की पढ़ाई के लिए बंगलौर के महारानी कॉलेज में प्रवेश मिल गया है। वह डाक्टर बनना चाहती है। एस.एस.सी. में उसने बहुत अच्छे अंक (74 प्रतिशत)

प्राप्त किए।

दो अन्य छात्र, जिन्होंने नवंबर 84 में एस.एस.सी. परीक्षा पास की, आजकल बंगलौर में नौकरी कर रहे हैं। उनकी इच्छा अपने जीवनयापन के लिए नौकरी करने की थी तथा साथ ही वे सांध्यकालीन कॉलेज में पढ़ाई जारी रखना चाहते थे। पर शेखर को कृष्णामूर्ति फाउंडेशन, ब्रुकवुड, इंग्लैण्ड में छात्रवृत्ति मिल गई है जबकि रामचंद्रन को इंटरनेशनल ट्रेवलिंग स्कूल में जगह मिल गई है। दोनों पाठ्यक्रम सितंबर 1985 में शुरू होंगे।

स्टाफ

1982 में इंद्राणी की शादी होने व स्कूल छोड़ने के बाद से हमारे यहां शिक्षकों का आना-जाना लगा रहा है। हालांकि 1983 में वह कुछ समय के लिए वापस आ गई थी। रेड्डेम्मा तथा शंकरा ने 1983 में हमारा स्कूल छोड़ा तथा उसके बाद शिक्षक की नौकरी कर ली। वे अब मदनापल्ली के पास स्थित ऋषि वैली की रूरल स्कूल में काम कर रहे हैं। इस समय श्री लता हमारे साथ शिक्षिका के रूप में करीब एक साल से हैं। सितंबर 1984 में हमें 6 महीने तक एक युवा स्वयंसेवी सुए वाल्मस्ले का साथ मिला। वह पेशे से तो पत्रकार हैं, लेकिन शिक्षण कार्य में हाथ बंटाने के लिए नीलबाग आईं तथा एक साल तक यहां रुकने की संभावना है।

शिक्षक तथा स्वयंसेवी शिक्षकों के अलावा स्टाफ के अन्य सदस्य हैं डोरीन ऑसबरॉ, पैनी तथा स्वयं मैं। बढ़ईगिरी का सारा काम करने व देखने वाला नरसिम्हुलू अभी तक हमारे साथ है। उससे हमें बहुत मदद मिलती है। मैकेनिक व ड्राइवर राजू ने पिछले साल भर हमारी बहुमूल्य मदद की है।

स्कूल की कार्य-प्रणाली तथा कार्यक्रम 'नीलबाग' नाम पुस्तिका के अनुसार चल रहे हैं, जिसका प्रकाशन पिछले वर्ष हुआ था। पाठ्यक्रम में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं किया गया है। 1985 की एस.एस.सी. परीक्षाओं में किसी भी छात्र के बैठने की संभावना नहीं है पर 1986 में दो छात्र तैयार हो सकते हैं। इस स्कूल में अब नौ छात्र ऐसे हैं जिनकी उम्र सात वर्ष से कम है।

विकासना

श्याम और लीला पवार के खेत पर स्थित स्कूल, जो मालती (1975-77 के बीच नीलबाग में प्रशिक्षित) द्वारा चलाया जा रहा है, अच्छी प्रगति कर रहा है। मालती यहां इस स्कूल में शुरू होने के समय से ही है। अब इस स्कूल में 24 बच्चे

हैं तथा मालती के अलावा नागमणि व लक्ष्मी शॉ दो अन्य शिक्षिकाएं हैं। तीन साल से अधिक पढ़ाने के बाद, लक्ष्मी शॉ ने अप्रैल 1985 में स्कूल छोड़ने का निर्णय ले लिया। वह बच्चों को पढ़ाने के बजाय अब कुछ और करना चाहती है। इस स्कूल में सबसे कम उम्र का बच्चा 4 साल का तथा सबसे अधिक 16 साल का है। मालती को आशा है कि 1986 में कुछ बच्चों को सातवीं कक्षा की परीक्षा दिला पाएगी।

स्कूल के बारे में एक अलग रिपोर्ट भी उपलब्ध है जिसमें पिछले साल के दौरान की गतिविधियों का और अधिक विवरण दिया गया है।

सुमावनम

1982 में शुरू हुआ यह स्कूल नरसिम्हन और ऊषा चला रहे हैं, यह नीलबाग से आठ किलोमीटर दूर सड़क के पास स्थित है।

1982 से 84 के बीच शिक्षकों के लिए एक घर, कामगार के लिए एक घर, स्कूल भवन तथा एक खुले कुएं के निर्माण में एक लाख रुपए से अधिक का व्यय हुआ। इस बारे में और अधिक वित्तीय विवरण यहां वित्त-खंड के अंतर्गत दिए गए हैं।

मौजूदा समय में, हस स्कूल में 11 बच्चे हैं जिनमें सबसे कम उम्र वाला 4 साल तथा सबसे अधिक उम्र का विद्यार्थी 12 साल का है। विद्यार्थियों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ाई जाएगी। 1984 में स्कूल से संबंधित एक अलग रिपोर्ट तैयार की गई थी।

दिगंतर

रोहित व रीना दिगंतर की जिम्मेदारी संभाले हुए हैं। अब इसे फेथ और जॉन सिंह वित्तीय मदद दे रहे हैं। जयपुर स्थित इस स्कूल को कुछ समय तक हमने आर्थिक मदद दी थी, लेकिन जब ट्रस्ट पर यह बोझ बहुत ज्यादा हो गया, तब फेथ व जॉन ने वित्तीय जिम्मेदारी एक बार फिर संभाल ली। हाल में लिखी गई एक रिपोर्ट के अनुसार, यह स्कूल बहुत अच्छी तरह से चल रहा है।

पहाड़ी

कुर्ग में रिक और पूर्णा शॉ एक स्कूल चला रहे हैं जिसे ट्रस्ट धन नहीं देता लेकिन यह बहुत कुछ नीलबाग के ही पदचिन्हों पर चल रहा है। रिक ने यहां 6 महीने तक काम किया जबकि पूर्णा लगभग 4 वर्ष तक डेविड की सेक्रेटरी रहीं।

उनके स्कूल में 17 बच्चे हैं तथा वहां काफी अच्छी प्रगति हुई है।

सृजन

एलिएनर वाट्स, जो पहले नीलबाग में एक वर्ष से अधिक रहीं, अब नेल्लोर के पास अपना ही स्कूल चला रही हैं तथा उनके साथ एक दूसरे शिक्षक शिवराम हैं। इस स्कूल को वित्तीय सहायता एक्शन एड देता है तथा एक स्वतंत्र ट्रस्ट इसका संचालन करता है।

वित्त

1983-84 के दौरान ट्रस्ट के सामने पैसे की समस्या खडी हो गई। सुमावनम पर बहुत खर्च हुआ जिसमें से अधिकांश उधार लिया गया था। इसकी वजह यह थी कि ट्रस्ट के पास दो स्कूलों (नीलबाग को डेविड ऑसबरॉ स्वतंत्र रूप से धन देते थे) को चलाने के लिए पर्याप्त धन था लेकिन पूंजीगत व्यय के लिए कुछ नहीं था। अत्यधिक आर्थिक तंगी के कारण कुछ कटौतियां करती पड़ीं और इसका सबसे पहला असर छात्रावास पर पड़ा। इस कारण नए प्रशिक्षणार्थियों को प्रवेश नहीं दिया गया तथा सितंबर 1984 में छात्रावास स्टाफ की सेवाएं समाप्त कर दी गईं। नीलबाग में पुस्तकालय भवन तथा सुमावनम में एक कार्यशाला/काष्ठशाला शेड की योजनाओं को कुछ समय के लिए छोड़ देना पड़ा।

अगस्त 1984 में डेविड ऑसबरॉ की मृत्यु के बाद, उनके कई मित्र मदद के लिए आए तथा ट्रस्टियों के लगातार प्रयत्नों से पूंजीगत व्यय के लिए धन जुटाया गया। अब नीलबाग में स्कूलों के संचालन की लागतों को ट्रस्ट पूरा करता है तथा स्वतंत्र वित्तीय सहायता नहीं मिलती। ट्रस्ट अब तीन स्कूल चला रहा है।

1981-82 के दौरान ट्रस्ट की चंदे से आय 6,375.00 रुपए थी। 1982-83 में यह बढ़कर 9206/- रुपए हो गई। इसी वर्ष 1982-83 के दौरान ही डेविड ने स्प्रिंग रीडर्स की रायल्टी ट्रस्ट को दान कर दी। इस तरह 1983-84 में आय 1,33,632.00 रुपए तक जा पहुंची। इस वर्ष (1984-85) भी ट्रस्ट की आय एक लाख रुपए से कहीं ज्यादा होगी।

1982-83 तथा 83-84 के बीच, डेविड ने एक बड़ा ऋण लिया जो कि सुमावनम द्वारा सामान की खरीद पर तथा मकानों व एक कुएं के निर्माण कार्य में लगा। यह ऋण 85000 रुपए से अधिक हो गया तो 1984 अगस्त से अक्टूबर के बीच 23000 रुपए का एक और ऋण लेना पड़ा क्योंकि डेविड की मृत्यु के बाद, ट्रस्ट के खातों पर रोक लगा दी गई। अब इस ऋण का अधिकांश चुका दिया गया

है। करीब 44000 रुपए देने बाकी हैं।

अगले वर्ष के दौरान ट्रस्ट की आय लगभग 10,000 रुपए प्रतिमाह होगी, यह निजी (स्वतंत्र) दानकर्ताओं से प्राप्त होने वाली चंदे की विभिन्न छोटी राशियों से अलग है। यह राशि तीनों स्कूलों को चलाने के लिए पर्याप्त है तथा साथ ही शेष ऋण की धीरे-धीरे अदायगी भी इससे की जा सकती है।

1984 में यू.एन.आई.एस. स्कूल न्यूयॉर्क के बच्चों ने सुमावनम के लिए 1700 अमरीकी डॉलर इकट्ठा किए। यह राशि नारियल के पेड़ लगाने में खर्च की जाएगी तथा आशा है कि नारियल की खेती से प्राप्त आय से स्कूल चलाने में मदद मिलेगी।

इस ट्रस्ट को एक और बड़ा चंदा जॉन यंगर ट्रस्ट, इंग्लैण्ड से प्राप्त हुआ। बर्ले के लॉर्ड बल्फोर जो नीलबाग एजुकेशन फाउंडेशन के सदस्य हैं, के प्रयासों से हमारे लिए फंड एकत्र किए जा सके। उक्त फाउंडेशन इंग्लैण्ड में एक स्वतंत्र ट्रस्ट के तौर पर स्थापित किया गया ताकि अपने ट्रस्ट को व दूसरों को मदद दी जा सके।

ट्रस्ट को मिलने वाले विदेशी अंशदानों को अब मदनापल्ली के वैश्य बैंक में एक अलग खाते में जमा किया गया है। हमारे ट्रस्ट का खाता भी इसी बैंक में है।

1970 के दशक में ट्रस्ट का एक खाता बंगलौर के इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस के परिसर में स्थित केनरा बैंक में चलता था। लेकिन यहां से यह शाखा दूर होने से हमें असुविधा होती, अतः ट्रस्टियों ने यहां का खाता बंद कर दिया। अब हमारे केवल दो ही खाते हैं। नियमित फंड (रुपयों में) के लिए खाता संख्या 4239 है जबकि विदेशी अंशदान के लिए खाता संख्या 5002 है।

1984 के दौरान भारत सरकार ने सभी ट्रस्टों के लिए एक परिपत्र (सर्कुलर) भेजा कि यदि ट्रस्ट के लिए विदेशी चंदा दिया जाता है तो नई दिल्ली में गृह मंत्रालय (एम.एच.ए.) की पूर्वानुमति लेनी होगी, हमने इस संदर्भ में आवेदन के साथ-साथ प्राप्त किए गए अंशदानों तथा उनके उपयोग संबंधी विवरण एम.एच.ए. को भेजे हैं।

ट्रस्ट के प्रतिमाह खर्चों का मोटे तौर पर ब्यौरा इस प्रकार है—

वेतन व छात्रवृत्तियां	6000.00
संचालन व्यय	2000.00
योग	8000.00 रुपए

10,000 रुपए प्रति माह की आय के साथ, हमारे पास कर्ज चुकाने के लिए कुछ पैसा बच जाने की उम्मीद है।

विदेशी अंशदान खाते का अधिकांश भाग सुमावनम में एक पंप तथा अन्य भवनों, विकासना में एक कमरे और अधिक नारियल पेड़ लगाने, भवनों की मरम्मत तथा तीनों स्कूलों के लिए पुस्तकें खरीदने में प्रयोग किया जाएगा।

ट्रस्ट के फंड कर-मुक्त हैं तथा सभी चंदों पर आयकर कानून की धारा 80-जी के तहत कर छूट मिलती है।

पुस्तक दान

1984 में बेलिथा प्रेस लिमिटेड, इंग्लैण्ड (यूके) के मार्टिन पिक ने आई.बी.बी.वाई. नामक संगठन के साथ मिलकर 150 डॉलर मूल्य के यू.एन.यू.एम.एस. (यूनेस्को की धन इकाइयां) ट्रस्ट को स्थानांतरित करने की व्यवस्था की। इस तरह, हमें सुमावनम के लिए इस मूल्य की पुस्तकें बंगलौर से मिल गईं, इसके लिए हम पिक के बहुत आभारी हैं।

यू.एन.आई.एस.

न्यूयार्क स्थित संयुक्त राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय स्कूल के बच्चे लंबे समय से हमारे मित्र रहे हैं। 1984 में यू.एन.आई.एस. के एक शैक्षणिक सदस्य ब्रायन काह्न कुछ दिन के लिए नीलबाग आए। वे यू.एन.आई.एस. में नीलबाग समिति के गठन प्रेरणास्रोत रहे हैं। हमने उनके लिए दोम्बरपल्ली गांव में निर्मित 100 से अधिक लकड़ी के कंघे भिजवाए। ये बच्चों द्वारा धन एकत्रित करने में काम में लिए गए। चंदा देने वालों को वृक्ष प्रमाण-पत्र दिए जा रहे हैं। छात्रों ने एक नृत्य कार्यक्रम के जरिए व अन्य विभिन्न बिक्रियों से भी धन एकत्र किया। यू.एन.आई.एस. के बच्चों ने हमारे लिए पिछले दो वर्षों में 2000 डॉलर जमा किए हैं। हम काह्न, अलिया खान तथा यू.एन.आई.एस. नीलबाग समिति के अन्य सदस्यों के प्रति कृतज्ञ हैं।

भूमिदान

इस वर्ष (1985) फरवरी के बर्ले के लॉर्ड बेल्फोर नीलबाग के दौरे पर आए। हमारे तथा सुमावनम के विषय में एक लंबी वीडियो फिल्म बनाने के अलावा, वे अपने साथ जॉन यंगर ट्रस्ट (इंग्लैण्ड) के ट्रस्टियों से 1000 पाउंड का चैक भी लाए थे। मद्रास के पास लार्ड बेल्फोर की जो जमीन है उसे शीघ्र ही

ट्रस्ट को दान कर दिया जाएगा। यह जमीन एक एकड़ है तथा इससे प्राप्त होने वाली राशि एक लाख रुपए से अधिक होगी। इस जमीन को ट्रस्ट को दान किए जाने के बाद बेचा जाएगा तथा प्राप्त राशि से स्कूल के लिए दूसरी जगहों पर अधिक उपयोगी जमीन खरीदी जाएगी। अभी यह जमीन जहां है, वह जगह किसी गांव के नजदीक नहीं है, अतः स्कूल के लिए अनुकूल नहीं कही जा सकती। लॉर्ड बेल्फोर की इच्छा है कि ट्रस्ट को कम से कम एक लाख रुपए मिलें और यदि जमीन की बिक्री से अधिक धन मिल जाता है तो शेष राशि किसी अन्य ट्रस्ट को दान की जा सकती है। पर यह सुनिश्चित करेंगे कि नीलबाग ट्रस्ट को इसमें से एक लाख रुपए तो मिलें ही। यह व्यवस्था भी हमारे लिए अनुकूल होगी क्योंकि इससे हमें कानूनी तथा सरकारी कागजी कार्यवाही कम करनी पड़ेगी।

इंग्लैण्ड से प्राप्त फंड

फरवरी 1983 में नीलबाग के दौरे के बाद पेनी के पिता मेजर जॉन बर्टन ने इंग्लैण्ड में कई संगठनों को भारत में नीलबाग व उसके कार्यकलाप के बारे में बताया। उनका ध्यान मुख्यतया पेनी की डिस्पेंसरी तथा उसके काम पर केन्द्रित था। उन्होंने जो भी धन एकत्रित किया है, वह खासतौर से डिस्पेंसरी के लिए रखा गया है। जैसा कि आप जानते हैं, इस डिस्पेंसरी पर हम पैसा लगा रहे हैं लेकिन वह ट्रस्ट से अलग हिसाब है। ट्रस्ट की गतिविधियों के दायरे में आम जनता के लिए डिस्पेंसरी का संचालन शामिल नहीं है। यह ट्रस्ट शैक्षणिक ट्रस्ट है तथा हम केवल अपने स्कूल के बच्चों को ही चिकित्सा सुविधा देने में समर्थ हैं, आने वाले समय में ट्रस्ट के मूल भागिता-पत्र (डीड) में संशोधन कर ट्रस्टीगण इस डिस्पेंसरी की गतिविधियों को भी शामिल कर सकते हैं। विकल्प के तौर पर, डिस्पेंसरी को एक स्वतंत्र अलाभकारी संस्था या ट्रस्ट के रूप मे पंजीकृत करना भी संभव हो सकता है।

निष्कर्ष

पिछले एक साल से, खासकर अगस्त में डेविड की मृत्यु के बाद, भारत में ट्रस्टियों व मित्रों ने खुद आगे आकर हमें कई तरह से मदद दी है। हालांकि, कई बार यह केवल प्रोत्साहन व सहानुभूति के रूप में ही थी लेकिन वह भी हम सभी के लिए अमूल्य मदद रही है।

एक स्वप्नद्रष्टा ने जो कुछ सार्थक कार्य शुरू किया, उसे जारी रखा जाना

चाहिए और हम भी वास्तव में वैसा ही करने की कोशिश कर रहे हैं। कुछ अन्य मित्रों ने स्वयं आगे होकर धन के रूप में दान दिया जो हमारे लिए बहुत मददगार साबित हुआ, खासतौर पर तब, जबकि ट्रस्ट की व्यवस्थाएं अस्त-व्यस्त थीं और हमें पांव जमाने की जरूरत थी। अपने उन सभी मित्रों, जिन्होंने अपनी सहानुभूति व्यक्त की, हम उनका हृदय से धन्यवाद देना चाहते हैं।

नीलबाग ट्रस्ट में वर्तमान चार ट्रस्टी हैं : निकालस ऑसबरॉ, एस. शेषाद्रि, विजय पदकी तथा एहसान हैदरी।

ट्रस्ट के बैंकर हैं :

वैश्य बैंक
खाता सं. : 4239
विदेशी अंशदान खाता सं. : 5002

ट्रस्ट का पता है :

नीलबाग
अप्पाराव स्ट्रीट, रायलपड. पो. औ.,
मदनापल्ली, श्रीनिवासपुर तालुक,
आंध्र प्रदेश, कोलार जिला,
कर्नाटक-563134

अनुवाद : अशोक थपलियाल

खंड : दो

नीलबाग का पुनर्संधान

एक अविस्मरणीय शिक्षक का शिक्षा प्रयोग

एस. आनंद लक्ष्मी

गत दशक में स्कूल जाने लायक उम्र के सभी बच्चों को स्कूल की धारा में शामिल करने के लिए व्यापक अभियान चलाया गया। सबको शिक्षा तथा शिक्षा का सार्वजनीकरण जैसे कुछ सरकारी किस्म के नारे भी इस अभियान का अंग बना दिए गए। सभी बच्चों को अनिवार्य अक्षर ज्ञान, अंक ज्ञान तथा कुछ व्यावसायिक दक्षता हासिल हो सके, यह सुनिश्चित करने के प्रयत्न को व्यापक जनसमर्थन भी मिला। हालांकि इस बात से सभी सहमत हैं कि लोकतंत्र में सबको शिक्षा मिलनी चाहिए, फिर भी इसे संभव बनाने के तरीकों पर काफी मतभेद हैं।

एक मत के अनुसार मौजूदा सभी पाठ्यक्रम ग्रामीण बच्चों के लिहाज से बेहद अजनबी, अप्रासंगिक तथा अव्यावहारिक एवं अनुपयुक्त हैं। जो पुस्तकें ये बच्चे पढ़ते हैं या जो निबन्ध लिखने की उनसे अपेक्षा की जाती है उनमें उनके जीवनानुभव कतई प्रतिबिम्बित नहीं होते। ऐसे में कोई ग्रामीण बालक जब प्राथमिक स्तर की परीक्षा उत्तीर्ण करके पहली बाधा को पार कर लेता है तो वह अपने परिवार से, अपने समाज से कट जाता है। अधिकांश शिक्षक शहरी होते हैं और ग्रामीण लोगों के प्रति उनके मन में कोई सम्मान का भाव नहीं होता। जाहिर है, ऐसी हालत में किसी ग्रामीण बच्चे का शैक्षणिक अनुभव बहुत अच्छा हो पाए, यह संभावना ही क्षीण हो जाती है। ऐसे में ग्रामीण विद्यालयों के लिए पाठ्यक्रम बनाने की प्राथमिक शर्त उनके रोजमर्रा के जीवन में काम आने वाले मुहावरों का उपयोग करके उनमें ऐसी क्षमताओं का विकास करना है जिन्हें अर्जित कर वे अपने ही परिवेश में बेहतर जीवन तलाश कर सकें।

एक वैकल्पिक नजरिया यह है कि शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य बच्चे को उन बातों से अवगत कराना है जो वह सामान्यत: नहीं जान पाता। यह शिक्षा ऐसी हो जो एक संकीर्ण, कम सुविधाओं तथा अवसरों वाले समाज में रहने वाले ग्रामीण

बालक को आगे बढ़ने में सहायता प्रदान कर सके। इस नजरिए के प्रस्ताव और उसके समर्थकों का मानना यह है कि हम जो शिक्षा प्रदान करें वह सुविधाहीन तथा सुविधासंपन्न बच्चों के लिए एक समान अवसर उपलब्ध प्रशस्त करने वाली होनी चाहिए। एक अच्छी शिक्षा ही समाज में व्याप्त असमानता से पार पा सकती है। डेविड ऑसबरॉ का नीलबाग स्कूल का प्रयोग इसी उद्देश्य को समर्पित था। ऐसे में, 5 सितम्बर को शिक्षक दिवस मनाते वक्त इस अद्भुत अध्यापक डेविड ऑसबरॉ को स्मरण करने से बेहतर और क्या हो सकता है!

डेविड ऑसबरॉ के निधन को आज तेईस वर्ष बीत चुके हैं। उनका नाम और शख्सियत ऐसी थी जिसे भुला पाना आसान नहीं है। इतने वर्षों बाद भी क्यों कोई डेविड से शिक्षा पर काल्पनिक संवाद करता है? मैं अपने आप से यह प्रश्न पूछती हूं। पर मैं यह भी जानती हूं कि यह सवाल केवल वाक्चातुर्य है, क्योंकि इसका जवाब मेरे पास पहले से ही है।

डेविड ऑसबरॉ एक अद्भुत शख्सियत थे, एक किस्म की परिघटना। यानि गर्मजोशी से भरे जोशीले, रचनात्मक व्यक्ति और करिश्माई शिक्षक। पढ़ाने के प्रति उन्हें जबरदस्त मोह था लेकिन भारत में मौजूद तमाम शिक्षा प्रणालियों से उनका मोहभंग हो चुका था। इसी मोहभंग की स्थिति ने उन्हें नीलबाग के विचार को बुनने तथा उस विचार को ठोस रूप से परिणत करने की दिशा में आगे बढ़ाया। इस स्कूल की मूल अवधारणा विभिन्न दर्शनों से ग्रहण की गई थी लेकिन इसका कुल स्वरूप विशुद्ध रूप से डेविड ऑसबरॉ का था और यह अपने आप में अनूठा था।

डेविड के निजी जीवन की संक्षिप्त जानकारी विभिन्न सदंर्भों को समझने में सहायक होगी। ऑसबरॉ जन्म से अंग्रेज, वर्ण से भारतीय और मिजाज से विश्व नागरिक थे। चालीस के दशक के शुरू में हाई स्कूल की शिक्षा समाप्त करने के बाद दूसरे विश्व युद्ध के अंतिम दौर में डेविड रॉयल एअरफोर्स में शरीक हो गए और भारत भेज दिए गए। उस समय वह भारत के उस इलाके में रहे जो आज बांग्लादेश है। भारत के ग्रामीण जीवन, यहां के लोगों तथा यहां के संगीत के साथ उनके प्यार और लगाव का ऐसा सिलसिला शुरू हो गया जो अगस्त 1984 में उनके निधन तक चलता ही रहा।

युद्ध समाप्त होने के बाद डेविड ने लंदन विश्वविद्यालय के भारतीय इतिहास तथा संस्कृति संबंधी पाठ्यक्रम में प्रवेश लिया। उन्होंने भारत लौटने के अपने लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए संस्कृत, हिंदी तथा उर्दू का अध्ययन किया। लंदन से इस पाठ्यक्रम में डिग्री लेने के साथ ही डेविड भारत लौट आए। शिक्षक

होने की प्रबल इच्छा ने डेविड को जे. कृष्णामूर्ति द्वारा स्थापित ऋषिवैली स्कूल की तरफ ठेल दिया। कुछ वर्षों तक वहां काम करने के बाद डेविड नीलगिरि के ब्लू माउंटेन स्कूल में चले गए। बाद में वे मैसूर आ गए, वहां उन्होंने क्षेत्रीय अंग्रेजी महाविद्यालय स्थापित किया व कुछ समय तक उसकी सर्वोच्च जिम्मेदारी संभाली।

फिर वे ब्रिटिश काउंसिल के अंग्रेजी को दूसरी भाषा के रूप में पढ़ाने के कार्यक्रम को चलाने वाले दल में शामिल हो गए। इस दल में उन्हें मद्रास में कारपोरेशन के एक स्कूल में सुविधा-वंचित वर्ग के बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाने की जिम्मेदारी सौंपी गई। यहां उन्हें भारतीय बच्चों की जरूरतों के अनुरूप पुस्तकों एवं कार्य पुस्तिकाओं की योजना तैयार करने का मौका मिला। उनकी विनोदप्रियता तथा स्वभावगत सरसता जिसकी छाप इन पुस्तकों के प्रत्येक पृष्ठ पर देखी जा सकती है और उनके मौलिक रेखांकनों के कारण ये पुस्तकें बच्चों के लिए बेहद आकर्षक बनीं।

ब्रिटिश काउंसिल, जो कि ब्रिटिश उच्चायोग का एक अभिन्न अंग है, की स्थानान्तरण संबंधी एक नीति है। इस नीति के तहत कोई भी व्यक्ति एक स्थान पर अधिकतम पंद्रह वर्ष तक ही रह सकता है। डेविड को जब अलग पदस्थापन के लिए भारत छोड़ने को कहा गया तो उन्होंने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ले लेना बेहतर समझा। उन्होंने कोलार जिले में आठ एकड़ का एक भूखंड खरीदा और वहां अपने नीलबाग के स्वप्न को मूर्त रूप देना शुरू किया। नीलबाग के पूरे वृतान्त को डेविड ऑसबरॉ की लीक से हटी जीवनी की संज्ञा दी जा सकती है। साथ ही इसे ग्रामीण भारत के पहली पीढ़ी के शिक्षार्थियों की स्तरीय शिक्षा के प्रयास का अध्ययन भी कहा जा सकता है।

डेविड एक पूर्ण व्यक्तित्व थे। उनका दर्शन संपूर्णतावादी था जो उनके कर्म, उनकी जीवन शैली, उनके गीतों, उनके अध्यापन आदि तमाम कार्यों में प्रतिबिंबित होता था। ये तमाम चीजें एक-दूसरे में गुंथी हुई थीं। नीलबाग की स्थापना में डेविड ने यह कहना छोड़ दिया कि 'काश मैं ऐसा कर पाता...' वे वह करने लगे जो करना चाहते थे। अपनी अद्भुत प्रतिभा के चलते हुए उन्होंने कई चीजें बहुत ही बेहतर ढंग से कीं।

सबसे पहले पेड़ लगाए गए। फिर उनके आस-पास डेविड के द्वारा तैयार डिजाइनों व लौरी बैकर की सलाह के आधार पर झोंपड़ियां बनाई गईं। डेविड स्वयं एक कुशल बढ़ई थे और शुरुआत में कक्षाओं के लिए कमरे तथा कार्यशाला का डिजाइन तैयार करने के साथ-साथ उनका निर्माण भी स्वयं उन्होंने ही किया

था। इनके साथ ही पारिवारिक आवास भी बनाए गए थे। परिसर की शेष इमारत का निर्माण पाठ्यक्रम का ही एक हिस्सा बन गया। कुछ महीनों के बाद बच्चों ने उस क्षेत्र के पारम्परिक गोल कक्ष (सुतिल्ला) का निर्माण भी किया था।

नीलबाग की समग्र अवधारणा अध्ययन, अवलोकन, विचार तथा शिक्षण के ऑसबरॉ के लम्बे अनुभवों से छनकर तैयार हुई थी। नीलबाग में आने वाले अक्सर पूछा करते कि यह स्कूल अन्य स्कूलों से भिन्न कैसे है? इस स्कूल का दर्शन क्या है? और, क्या नीलबाग की अवधारणा को अन्य स्कूलों में इसी रूप में लागू किया जा सकता है? डेविड स्वयं पूरे उत्साह एवं साफगोई के साथ विनोद मिश्रण कर इनका उत्तर देते थे।

वर्ष 1980 का एक कार्यदिवस। मैं सुबह नौ बजे नीलबाग पहुंची। फूस की छाजन वाली एक झोपड़ी, (जिसमें तीन से अठारह साल तक की उम्र के 25 विद्यार्थी एक साथ बैठ सकते हों) के एकदम स्वच्छ वातावरण में बच्चे बहुत मधुर स्वर में कुछ गा रहे थे। डेविड आगे-आगे गा रहे थे। अन्य तीन शिक्षक उनका साथ दे रहे थे। इन गीतों में एक चौंका देने वाली विविधता थी। गुजराती भजन, असमिया, नाविक गीत, केरल का मछुआरा संगीत, अंग्रेजी प्रेमगीत, फ्रेंच तथा जर्मन गीतों के साथ तेलुगु भक्ति संगीत सभी एक साथ प्रवाहित हो रहे थे। यहां हमारे विद्यालयों की तरह प्रत्येक बच्चा अपनी आवाज को सबसे ऊंचा सुनाने के प्रयास में नहीं लगा था बल्कि सभी बच्चे एक लय तथा संयत आवाज में एक-दूसरे के साथ स्वर मिलाकर गा रहे थे।

यहां प्रतिदिन सुबह का एक घंटा संगीत का होता है जिसमें सभी बच्चे साथ होते हैं। इससे सभी को एक दूसरे के साथ तादात्म्य स्थापित कर पाने में मदद मिलती है। रूपकीय एवं वास्तविक दोनों ही अर्थों में। ऑसबरॉ की यह स्पष्ट मान्यता थी कि कोई बच्चा अच्छा गा सके इसके लिए इसे अच्छी तरह से सुनना भी सिखाया जाना चाहिए। पाठ्यक्रम में ही यह भी सिद्धांत रूप में बताया गया था कि शांति के महत्त्व को समझकर ही कोई बालक ध्वनि के महत्त्व को जान सकता है। गीतों का संग्रह बढ़ता जाता क्योंकि संगीत जानने वाले प्रत्येक आगंतुक से बालकों को एक नया गीत सिखाने का अनुरोध किया जाता। संगीत के घंटे के बाद बच्चे स्वयं अलमारियों में रखी पाठ्यसामग्री उठा लेते। यह सामग्री इस तरह विकसित की गई थी कि बच्चे अपने आप अथवा अपने से बड़े बच्चों की सहायता से इन्हें पढ़-समझ सकें। शिक्षक बच्चों की मदद के लिए अथवा उनको ध्यान में रखने के लिए तत्पर रहते लेकिन पाठ आरंभ करने वाले केन्द्रीय व्यक्ति के रूप में नहीं।

अंग्रेजी तथा तेलुगु में तैयार की गई इस स्व-शिक्षण सामग्री में अधिकांश हिस्सा कार्ड, पहेलियों तथा स्थानों व गतिविधियों के नामों से जुड़े शाब्दिक खेलों का होता है। ऑसबरॉ व अन्य शिक्षकों द्वारा तैयार चित्रों अथवा लिखित रूप में बहुत सावधानीपूर्वक तैयार की गई इस पाठ्यसामग्री का वर्गीकरण उसकी जटिलता के आधार पर किया गया था ताकि बालक प्रत्येक अभ्यास को पूरा करते हुए एक निश्चित मार्ग पर आगे बढ़ सकें। बड़े बच्चों की गणित की कक्षाएं आमतौर पर दोपहर में भोजनावकाश के बाद रखी जातीं, इस बात पर बल देने के लिए यदि स्थितियों का सही संयोजन किया जाए तो दिन का कोई भी भाग जानने तथा सीखने के लिए समान रूप से सही एवं उपयुक्त हो सकता है।

पाठ्यक्रम के अन्य महत्त्वपूर्ण पक्षों में बालक-बालिकाओं को संगीत सिखाना व उसे रिकार्डर (क्लेरिनेट जैसे आकार-प्रकार के वाद्य) पर बजाना, मिट्टी का काम करना व चाक पर बर्तन बनाना, बढ़ईगिरी का काम करना व वस्तुएं बनाना, कशीदा काढ़ना व क्रेयन (रंगीन चॉक) तथा जल रंगों के साथ चित्र बनाना सिखाया जाना आदि प्रमुख थे। यह लिंगभेद विहीन पाठ्यक्रम का अति उत्तम नमूना था। इसने मानसिक तथा शारीरिक श्रम के बीच की दूरी को भी मिटाने का काम किया क्योंकि स्कूल की कार्ययोजना में हस्तशिल्प को बहुत महत्त्वपूर्ण तथा अनिवार्य स्थान दिया गया था। हाथ से काम करना, उसमें दक्षता तथा अचूक सूक्ष्मता लाना, एक बार माटी हाथ में लेने के बाद एक कलात्मक वस्तु तैयार करने की लगन, आरी हाथ में हो तो सफाई के साथ लकड़ी को काटना, आदि को भी पाठ्यक्रम में उतना ही महत्त्व दिया गया था जितना भाषा अथवा गणित को। शिक्षा केवल दिमाग में घटित होने वाली प्रक्रिया नहीं है बल्कि वह समग्र व्यक्तित्व का निर्माण करती है। बेहतरीन शिक्षा तब ही संभव है जब तक बच्चे को शिक्षकों तथा सहपाठियों के स्नेह बल पर आत्मसम्मान को विकसित करने का अवसर उपलब्ध हो सके। शिक्षक तथा सीखने वाले के बीच ऐसा विश्वास तथा समझ किसी परिवार में भी दुर्लभ है।

डेविड ऑसबरॉ कहा करते थे कि उनके सामने अनुशासन की कोई समस्या आती ही नहीं थी क्योंकि अनुशासन पर वहां कतई जोर था ही नहीं। नीलबाग में कोई नियम नहीं थे, सिर्फ एक आचारसंहिता थी जिसके पालन के आदेश नहीं दिए जाते थे बल्कि उदाहरणों के जरिए उसे अभ्यास में लाया जाता था। शिक्षक के लिए इसमें ढेरों चुनौतियां तथा जिम्मेदारियां थीं। शनिवार को सुबह 11 बजे का समय स्कूल की साफ-सफाई के लिए नियत था। सभी शिक्षकों व छात्रों की यह साझी जिम्मेदारी थी। काम सबके बीच बंटे हुए थे और जिम्मेदारियां बदलती

रहती थीं ताकि प्रत्येक व्यक्ति की प्रत्येक काम करने की बारी आए। झाड़, पोंछ, धुलाई, कील गाड़ना, मरम्मत करना, पेंट करना, रद्दी जलाना, ब्लैक-बोर्ड काला करना— सभी काम निर्धारित क्रम के अनुरूप होते। शनिवार के दिन वहां सब चुपचाप चींटियों की फौज की तरह अपने-अपने काम में व्यस्त रहते। ऑसबरॉ धोती को घुटनों तक मोड़कर लपेटे, बांधे कहीं सीटी बजाते हुए अपने हिस्से के काम को अंजाम दे रहे होते।

कुल मिलाकर वहां न कोई काम तुच्छ था, न महत्त्वपूर्ण; न तो स्कूल का कोई कालांश उबाऊ था और न कोई पाठ अनुपयोगी। डेविड ऑसबरॉ का सिद्धांत यही था कि जो कुछ भी किया जाए पूरी लगन के साथ बेहतरीन ढंग से किया जाए।

एक और शिक्षाशास्त्रीय सिद्धांत जिसे दृढ़ता के साथ अपनाया गया वह था ऊर्ध्वाधन समूहन (वर्टिकल ग्रुपिंग) का। अधिकांश स्कूलों में उम्र के अनुसार समूह बनाए जाते हैं और इसके पीछे मान्यता है कि एक ही उम्र के बच्चों को एक कमरे में बैठाकर पढ़ाना आसान होता है। लेकिन डेविड ऐसी औपचारिक विधि से पढ़ाने में विश्वास नहीं रखते थे। वे सीखने के लिए सही वातावरण बनाने पर जोर देते। वे अनेक बार एक एक बच्चे से अकेले बातचीत करते तो कई बार बच्चों के किसी समूह को एक साथ भी कुछ सिखाया जाता। लेकिन उनका मानना था कि जब एक ही समूह में सभी उम्र के बच्चों को शामिल कर लिया जाता है तो उनमें एक दूसरे से सीखने और सिखाने की प्रवृत्ति पनपती है और उनके बीच परस्पर प्रतिस्पर्धा कम रहती है। प्रतिभा के निखार के लिए प्रतिस्पर्धा नीलबाग के शिक्षा के सिद्धांत में शुमार नहीं होती। डेविड ऑसबरॉ का मानना था कि समर्थ बनाने की इच्छा रखना और कक्षा में दूसरों से बेहतर होने की इच्छा रखना, दो अलग-अलग बातें हैं और वे इनमें से पहली पर यकीन करते थे।

नीलबाग में कभी भी एक समय में तीस से अधिक बच्चे नहीं रहे। जाहिर है ऑसबरॉ आकार को बड़ा बनाने में विश्वास नहीं रखते थे। लेकिन वे मानते थे कि कोई भी नीलबाग जैसा स्कूल चला सकता है। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए उन्होंने एक शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू किया जिसके तहत एक समय में चार शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाता।

प्रशिक्षण विद्यालय में पढ़ाते हुए होता था। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि केवल विधियां सीखी जाती थीं और सिद्धांत नहीं। प्रशिक्षु शिक्षक को शिक्षादर्शन, मनोविज्ञान तथा शिक्षाशास्त्र की अनेक पुस्तकों को पढ़ना होता था। उन्हें शिक्षण संबंधी विभिन्न कार्य करने होते थे जिनमें पढ़ी पुस्तकों की विवेचना भी शामिल

थी। शिक्षकों को अपनी विचार प्रक्रिया को समृद्ध बनाने तथा ज्ञान को परस्पर बांटने के लिए सेमिनार, परिचर्चा, बहस आदि के अनेक अवसर दिए जाते। यह सब इसलिए जरूरी था कि शिक्षक न केवल चिंतन की आदत डालें बल्कि अपने ज्ञान के सीमांतों का विस्तार भी कर सकें। शुरुआत में प्रशिक्षण की अवधि एक वर्ष ही रखी गई थी लेकिन बाद में डेविड ने यह महसूस किया कि इस दर्शन की समझ, सभी पुस्तकों के आलोचनात्मक अध्ययन तथा शिक्षण में पूर्ण आत्मविश्वास व दक्षता अर्जित करने के लिए कम से कम दो साल का समय दिया जाना चाहिए।

डेविड का मानना था कि कविता जीवन के लिए अनिवार्य है। इससे अन्तर्दृष्टि तीक्ष्ण होती है तथा यह संवेदना का विकास करती है। शिक्षा के अपने मानक सिद्धांतों के अनुरूप डेविड हर उस विषय पर बच्चों से भी चर्चा करते जिसे वे मूल्यवान मानते। सप्ताह में दो-तीन बार अंग्रेजी की कविताएं सुनाते— कभी खुद की लिखी हुई भी। जरूरत पड़ने पर वे मुहावरों की छवियों एवं भंगिमाओं का भी खुलासा करते। धीरे-धीरे बच्चे स्वयं डेविड की निजी लाइब्रेरी से कविताएं चुनकर पाठ के लिए लेने लगे। बाद के समय में अधिकांश बच्चे स्वयं भी अंग्रेजी में कविताएं लिखने लगे, अधिकांश बच्चों की कविताएं छंदमुक्त होतीं। जब बच्चे अपनी रुचि के विषय पर तेलुगु में भी कविता करने लगे तो डेविड को यह अहसास होने लगा कि उनका लगाया पौधा अब फलने लगा है।

जो बच्चे सैकेण्डरी के स्तर पर पहुंचे वे आन्ध्र प्रदेश की सैकेण्डरी की परीक्षा में बैठे और वहां जिन विद्यार्थियों ने मान्यता प्राप्त स्कूलों में अध्ययन न किया हो वे स्वयंपाठी छात्र के रूप में यह परीक्षा दे सकते हैं। नीलबाग को परीक्षा बोर्ड से मान्यता नहीं मिली थी। परीक्षा के लिए बच्चों ने अंग्रेजी, इतिहास व नागरिक शास्त्र विषय चुने, जिन्हें पढ़ने में उन्होंने नीलबाग के शिक्षकों की सहायता ली। इस दौरान भी बच्चों में कम से कम अपना एक तिहाई समय गैर-परीक्षा गतिविधियों में बिताने की अपेक्षा की जाती थी। संस्कृत ऑसबरॉ को बहुत प्रिय थी और वे स्कूल में बच्चों को संस्कृत सिखाना जरूरी मानते थे। बच्चे अक्सर संस्कृत में संवाद, कविताएं अथवा लघु-नाटिकाएं पढ़ने के प्रयास करते।

रंगमंच से जुड़ी गतिविधियां भी पाठ्यक्रम का हिस्सा थीं। साल में एक या दो बार बच्चे शेक्सपीयर के किसी नाटक के किसी एक दृश्य का मंचन करते। नाटक की वेशभूषा तथा अन्य तमाम सामग्री बच्चे ही तैयार करते। मंच पर हाथों से टार्च के द्वारा प्रकाश व्यवस्था की जाती, जिसका संचालन बच्चे आसपास के पेड़ों पर बैठकर करते। डेविड की पुरानी आस्टिन कार की हेडलाइट भी कई बार

मंच को प्रकाशित करने के काम आती। इस सारे काम में सभी को बहुत लुत्फ आता। वे सभी पूरी मुस्तैदी के साथ एक अनुशासित टीम की तरह वेशभूषा तैयार करते, साज सज्जा की व्यवस्था करते तथा अपनी भूमिका का निर्वाह करने में अभिनेताओं की मदद करते। विभिन्न अवसरों पर बच्चे बंगलौर तथा मद्रास में ब्रिटिश काउंसिल अथवा ऑसबरॉ के मित्रों के घरों में भी नाटक का प्रदर्शन करने जाते।

बच्चों को गृहकार्य दिया जाता लेकिन उसे पूरा करने के लिए निर्धारित समय के मामले में पर्याप्त लचीलापन था। अधिकांश बच्चे अपने माता-पिता के साथ एक-एक झोंपड़ी में रहते जहां उन्हें गृहकार्य के लिए पर्याप्त जगह तथा समय मिलना संभव ही नहीं था। इसलिए शाम के समय बच्चे स्कूल आ जाते और यहां के कमरों में किसी बड़े व्यक्ति की सहायता के बगैर अपने गृहकार्य को पूरा करते। रात 9.30 बजे के बाद ऑसबरॉ वहां आते और बच्चों के साथ- साथ चलकर उन्हें उनके घरों तक छोड़ आते।

ऐसी और बहुत सारी जानकारियां दी जा सकती हैं। उनका सिलसिला चलता ही रह सकता है, पर अब हमें इसकी केन्द्रीय विषयवस्तु को देखना चाहिए। कोई भी शिक्षक जिस बात को सर्वाधिक मूल्यवान मानता है उसे वह सर्वाधिक अच्छे ढंग से सिखा सकता है। शिक्षण केवल निर्देश देना नहीं है, यह किसी मूल्यवान चीज को शिक्षार्थी के साथ बांटना है। और शिक्षक का बच्चे के प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार यहां बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। और इसमें पिग्मेलियन प्रभाव भी दृष्टिगत होता है— जब बच्चों को मेधावी, इच्छुक और उत्साहित माना जाता है तो वे इन अपेक्षाओं को पूरा भी करते हैं। प्रत्येक बच्चे की अपनी प्रतिभा, क्षमता अथवा कमजोरी हो सकती है।

एक अच्छी प्रणाली किसी भी बच्चे को अपनी रुचियों एवं क्षमताओं के श्रेष्ठतम विकास में मददगार होती है। शिक्षक को अपने विद्यार्थी की सीखने की क्षमता में पूरा विश्वास लेकर चलना होता है और तब प्रत्येक बच्चा अपनी योग्यता के अनुरूप स्वयं अपनी गति से चीजों को सीखता या ग्रहण करता है। किसी एक गतिविधि में पूरे मनोयोग से उत्कृष्टता के लिए जुट जाने की क्षमता का साधारणीकरण किया जा सकता है। इसका तद्नुरूप प्रभाव गतिविधियों के अन्य क्षेत्रों पर भी देखा जा सकता है। और ऐसे करिश्माई शिक्षक, जो संवेदनशील मनुष्य तथा उत्कृष्ट कलाकार भी हों, की मौजूदगी में एक बच्चे के व्यक्तित्व को असीम विस्तार मिल जाता है— एकदम सीमाहीन।

अनुवाद : देवयानी

जहां मानस भयमुक्त हो

अमुक्ता महापात्र

स्कूल की ओर जाती ढलान वाले रास्ते पर मैं उतरती चली गई। स्कूल कक्ष के दरवाजे से मैंने देखा, विक्टोरियन शैली के बालों वाली एक 'अंग्रेज' महिला गांव के बच्चों के एक समूह को लेकर वहीं जमीन पर बैठी हुई थी। पांच से पन्द्रह साल के बीच के ये लड़के-लड़कियां जूट पर सुओं से कुछ काढ़-बुन रहे थे। इनमें से एक या दो बच्चे तो चटाई के किनारे पर बैठे थे जबकि अन्यों ने चटाई के बीच अपनी जगह बनाई हुई थी। वहां उमस भरा वातावरण था जहां कोई गंभीर-सा काम चल रहा था।

नीलबाग का यह मेरा पहला अनुभव था जब मैं वहां गई। लगभग एक साल या कुछ अधिक समय पहले मैं वहां 1977 में एक प्रशिक्षण कार्यक्रम में शामिल हुई थी। वहां दिखने वाला हस्तशिल्प का सत्र श्रीमती डोरीन ऑसबरॉ द्वारा आयोजित किया गया था। एक ऐसी संस्था को बनाए और टिकाए रखने, जीवंत रखने के प्रति वे उतनी ही समर्पित थीं जितने कि डेविड ऑसबरॉ। नीलबाग ने बच्चों और शिक्षकों को तैयार किया, और शिक्षकों को प्रशिक्षण के जरिए एक खास काम को आगे तक फैलाया।

डेविड ऑसबरॉ की चर्चा किए बगैर नीलबाग की चर्चा अधूरी है। दूसरे विश्वयुद्ध के समय डेविड जब यहां थे तब वे भारत से काफी प्रभावित हुए। वे मैसूर के एक कॉलेज में पढ़ाने लगे। लेकिन बहुत जल्दी उन्हें वह जगह छोड़नी पड़ी क्योंकि वे छात्रों का पक्ष लेते थे तथा उन्हें प्रशासन का विरोध करने को प्रोत्साहित करते थे। तब उन्हें ऋषिवेली के बारे में पता चला, जो ठीक उसी समय कुछ नए सिद्धान्तों के साथ फिर से शुरू हुआ था। डेविड ऋषिवेली के दृष्टि-

सम्पन्न शिक्षक-समूह में शामिल हो गए। उन दिनों दार्शनिक जे. कृष्णमूर्ति इस शिक्षक-समूह के सदस्यों के साथ चर्चा के लिए काफी समय दिया करते थे। इन चर्चाओं के जरिए डेविड को स्कूल में दिन-प्रतिदिन आने वाली समस्याओं को लेकर समझ को साफ करने का अवसर मिला। उनके विचारों ने डेविड को काफी प्रभावित किया। रवीन्द्रनाथ टैगोर के काम और लेखन ने भी उन्हें काफी प्रभावित किया और अगर मेरी स्मृति ठीक है तो नीलबाग नाम टैगोर की ही एक किताब में से है। एक बार उन्होंने परिसर के एक मुहाने पर, जहां कई रास्ते मिलते थे, खड़े होकर बताया कि गांव के रास्ते कभी सीधे नहीं होते क्योंकि यह एक लम्बे कालान्तर में लोगों के पद्चिन्हों से बने होते हैं।

डेविड के काम को बर्ट्रेंड रसेल के विवेक-बोध और आर.एफ. डियॅरडेन के तार्किक शिक्षायी दर्शन से भी दिशा मिली। उनकी प्रतिभा बहुआयामी थी तथा उनमें कई तरह के कौशल थे। वह एक अच्छे बढ़ई थे तथा अक्सर अपने वर्कशॉप में पाए जाते थे। विशेषकर तब जबकि उनकी मनोदशा ठीक न हो। उन्होंने स्वयं उस स्तर तक संस्कृत सीखी कि वे श्लोक तथा कविताएं रच सकें। वे तबला बजाते थे, गणित पढ़ाते थे। उनकी हस्त-लेखन शैली तिरछी (इटेलिक) और इस कदर खूबसूरत हुआ करती थी कि कोई बस देखता रह जाए, इसके बजाय कि कोई पढ़े, आखिर उन्होंने लिखा क्या है। वे अपने नाट्य-कौशल के कारण भी काफी जाने जाते थे। इस क्रम को और आगे बढ़ाया जा सकता है। स्कूल में बच्चों और अन्य लोगों द्वारा डेविड के इन अनन्त गुणों के प्रति उत्साह दिखाने से इन सबको अभिव्यक्ति मिली।

अब मैं यहां नीलबाग के एक महत्त्वपूर्ण आयाम का जिक्र करूंगी जो कि आजकल शिक्षाविदों के बीच चर्चा का विषय बना हुआ है। हममें से कई लोगों ने सरकारी स्कूलों में चलने वाले बहु-श्रेणी शिक्षण और उसके संदर्भ में अक्सर होने वाली शिकायतों को सुना होगा। ऐसा माना जाता है कि यह शिक्षक और बच्चों दोनों के लिए हानिकारक है। शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहे लोग इसे एक कक्ष, एक कक्षा और एक शिक्षक वाली व्यवस्था के रूप में बदलना चाहते हैं। लेकिन मोन्टेसरी पद्धति की तरह नीलबाग में मिले-जुले आयु समूह तथा बहु-श्रेणी परिवेश को वरीयता देने की समझ काम करती थी। यह माना गया था कि बच्चों के सीखने के लिए यह एक आदर्श वातावरण है।

यह महसूस करने के लिए कि यह सब कुछ किस प्रकार काम करता है, आप अपने घर के संदर्भ में कल्पना करें कि वहां एक ही आयु-समूह के 10 बच्चों (30 नहीं जो कि आमतौर पर एक कक्षा की न्यूनतम संख्या है) की

देखभाल आपको करनी है। दुबारा कल्पना करें कि बच्चों की संख्या इतनी ही है लेकिन ये अलग-अलग उम्र के बच्चे हैं। आपके लिए और उन बच्चों के लिए इन दोनों स्थितियों में कौन-सी ज्यादा अच्छी है। संयुक्त परिवार के अपने अनुभव से यह सोचें कि विभिन्न आयु के बच्चे कैसे अपने आपको वयस्कों के हस्तक्षेप के बगैर व्यवस्थित करते हैं। शादी-विवाह इत्यादि जैसे किसी सामाजिक आयोजन के अवसर पर जब काफी भीड़ एकत्रित होती है तब यह काफी मुश्किल होता है कि आप किसी बच्चे को उन बच्चों के समूह से बाहर खींच लाएं जहां वह समूह में एक-दूसरे के साथ मशगूल हो रहे होते हैं और अपनी खुद की कोई गतिविधि आयोजित कर रहे होते हैं।

अगर हम किसी झुग्गी-झोंपड़ी और गांवों पर विचार करें तो पाते हैं कि वहां अलग-अलग आयु समूह के बच्चे एक-दूसरे के साथ सार्थक रूप से खेलते, काम करते और समाजीकृत होते हैं। किन्हीं ऐसे परिवारों को तुलनात्मक रूप में देखें जिनमें जुड़वां बच्चे हों और अलग-अलग उम्र के बच्चे हों। इन स्थितियों में पल रहे बच्चों का अवलोकन और उन पर विचार करें कि वे एक-दूसरे को कैसे देखते हैं और एक-दूसरे से कैसे सीखते हैं। हमारे पास ऐसे कई उदाहरण हैं जो बताते हैं कि बच्चों के लिए किस प्रकार एक मिश्रित आयु समूह या जैसा कि प्रायः कहा जाता है एक पारिवारिक समूह में काम करना और सीखना काफी आसान होता है।

लेकिन जब बच्चा स्कूल आता है तो हम क्या करते हैं? जिस प्रकार के स्कूल आजकल हैं वे उन्हें ऐसी कृत्रिम स्थितियों में ढकेल देते हैं जिनका जीवन और समाज से कोई सम्बन्ध नहीं है।

यहां इसके कुछ जाने-पहचाने उद्धरण हैं— बच्चा जिसे धाराप्रवाह बोलता है, उससे जोड़े बगैर भाषा को अलग से लगभग एक 'मार्स-कोड' (उभरे हुए अक्षरों से लिखने का एक तरीका) के रूप में पढ़ाया जाता है। गणित का परिचय इस प्रकार कराया जाता है मानो यह एक ऐसी समस्या है जिसे न तो हम खुद समझ सकते हैं और न ही खुदा। ठीक उसी तरह अन्य विषयों में भी होता है। अगर कोई इनकी विधि को देखे तो पाएगा कि विगत शताब्दी में तमाम शोध, अध्ययन और बच्चों को केन्द्र में रखकर जो काम हुए हैं, उनका असर सामान्य कक्षाओं में नहीं दिखता। बच्चों के साथ कुछ इस तरह का व्यवहार किया जाता रहा है मानो कि वे निहायत जड़बुद्धि हों, जो बिना स्पष्ट निर्देश के पाठ्य-पुस्तक का एक पन्ना भी नहीं पलट सकते (आप कक्षाओं में शिक्षकों द्वारा दिए जाने वाले एक आम निर्देश को सुन सकते हैं : 'पन्ना पलटो') शिक्षक अपने आपको

एक ऐसी व्यवस्था में ढाल लेते हैं जहां वे महसूस करते हैं कि वे कुछ नहीं कर सकते और न ही किसी चीज पर उनका नियंत्रण है। स्कूल का पाठ्यक्रम, वहां प्रयुक्त शिक्षण-विधि और वयस्कों के व्यवहार में किसी परिवर्तन की कल्पना नहीं की जाती बल्कि इन्हें अपरिवर्तनीय मानवीय और सामाजिक मूल्य माना जाता है।

जब स्कूल इन स्थितियों में हों तो क्या यह संभव है कि उन्हें इस प्रकार मोडा जाए ताकि ये और अधिक मानवीय हो सकें। बच्चे कैसे बेहतर सीख सकते हैं— इस संदर्भ में होने वाले संधान से ये सम्बद्ध हो सकें। अगर कोई चाहे तो वह स्कूल के वातावरण को बदल सकता है, यह कुछ ऐसा मुश्किल भी नहीं है। आखिर स्कूल इंसानों की ही ईजाद है जो पिछले कुछ सौ सालों पहले ही अस्तित्व में आया है। जबकि उससे पहले हजारों साल से इंसान बगैर इस प्रकार बच्चों की बाड़ाबंदी किए साथ-साथ रहते, सीखते और एक-दूसरे का सहयोग करते हुए सभ्यता के मुकाम तक पहुंचे हैं। यहां इसकी वकालत नहीं की जा रही है कि हमें इन संस्थाओं को समाप्त कर देना चाहिए। हम ऐसा कर भी नहीं सकते हैं। लेकिन जो हम कर सकते हैं वह यह है कि हम स्कूल को बच्चों के विकास की जरूरतों और सीखने की आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त बना सकते हैं ताकि यह मानव समुदाय में अपनी पूरी भागीदारी निभाने वाले सदस्य बन सकें।

इसके लिए जरूरी नहीं है कि हम फिर से नई इमारत की नींव खोदें बल्कि महज इतना करने की जरूरत है कि हम अपने पूर्वाग्रहों को एक ओर रखें। तभी हम अपने इतिहास के और उन व्यक्तियों, संस्थाओं और देशज समुदायों के जीवन और काम से सीख सकते हैं जिन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रयोग किए हैं।

ऐसा ही एक प्रयास नीलबाग है जहां मैंने प्रशिक्षु शिक्षक के रूप में डेढ़ वर्ष बिताया है। यह वो जगह है जहां मानव होने का कुछ अर्थ होता है, समुदाय का सदस्य होने का एक मतलब है और साथ ही एक व्यक्ति मात्र होने के भी मायने हैं। यही वह मूल आधार है जिसका सब पालन करते हैं। एक बच्चा संभवत: पांच भाषाएं सीख सकता है— यह अच्छी बात है लेकिन जिन्दगी का सबसे महत्त्वपूर्ण आयाम नहीं। कोई दूसरा बच्चा संभव है कि इंजिन से चलने वाली कोई मशीन बना दे, इसके लिए हम आनन्द मना सकते हैं लेकिन यह भी कोई अंतिम लक्ष्य नहीं है। बुनियादी मसला यह है कि तुम एक गरिमायुक्त मानव में बदल रहे हो या नहीं और तुम्हारे सीखने की यह प्रक्रिया इस बदलाव में सहायक हो रही है या नहीं। सीखना महत्त्वपूर्ण है पर विकास लक्ष्य है— व्यक्ति, समूह

और वृहत्तर समाज का विकास।

बच्चे लगभग सारे दिन मिली-जुली आयु के बच्चों के साथ पारिवारिक से वातावरण में अपना-अपना काम करते हैं। विषयों के लिए एक समय-सारिणी होती है और शिक्षकों को तयशुदा समय होता है। बच्चे छोटे-छोटे समूहों में जरूरत के अनुसार शिक्षक के पास आते हैं या शिक्षक उन्हें कुछ नया बताने के लिए बुला लेते हैं। पर्यावरण अध्ययन और विज्ञान जैसे विषयों को पढ़ाते समय किसी पाठ को पूरे समूह के समक्ष एक साथ प्रस्तुत किया जाता है लेकिन उसके बाद पाठ से संदर्भित अन्य सभी क्रियाकलाप बच्चे अकेले, युगल या छोटे-छोटे समूहों में करते हैं। बच्चों के सीखने के स्तर के अनुसार विषयवार काम करने के समूह बदलते रहते हैं। उदाहरण के लिए कोई बच्चा संभव है कि भाषा की कक्षा में बड़े बच्चों के समूह के साथ हो लेकिन गणित की कक्षा में छोटे बच्चों के साथ काम करे।

बच्चों को सीखने के उनके स्तर के अनुसार समूहों में रखा जाता था और यह भी परस्पर थोड़ा अलग-अलग होता था। महत्त्वपूर्ण यह होता था कि उन्हें सीखने के लिए खुद प्रयत्न करना होता था। इसके पीछे यह शिक्षण-सिद्धांत रहता था कि कोई कार्य किसी समूह के समक्ष प्रस्तुत तो किया जा सकता है लेकिन उस पर चर्चा व्यक्तिगत स्तर पर होनी चाहिए। इसका मतलब यह हुआ कि किसी बच्चे विशेष की तत्कालिक संज्ञानात्मक जरूरत को कक्षा में पूरा किया जाना चाहिए।

कई बार ऐसा होता है कि निकट के गांव के अभिभावक या अन्य लोग अंग्रेजी सीखना चाहते हैं या फिर किसी परीक्षा में बैठना चाहते हैं। सुबह हफ्ते में दो बार लगने वाली कक्षा का इसके लिए इस्तेमाल किया जाता है ताकि उनकी मदद हो सके। उन्हें पढ़ाए कौन? बेशक, यहां पढ़ने वाले बच्चे। हर बच्चे पर एक वयस्क को पढ़ाने की जिम्मेदारी है। वे कक्षा के बाहर बैठते हैं। मुख्य कक्षा के इर्द-गिर्द छितराए हुए। जो बच्चे पढ़ाते नहीं हैं, वे अंदर अंग्रेजी की कक्षा में पढ़ रहे होते हैं। इस क्रम में कई बार सीखने-सिखाने वालों की आयु का फैलाव तीन साल से चालीस साल तक हो जाता है। इस काम में शिक्षक बच्चों की मदद तब ही करते थे जब उन्हें इसकी जरूरत होती थी।

सीखना तो ठीक है पर परीक्षाओं का क्या— यह कोई भी पूछ सकता है। नीलबाग में कोई परीक्षा नहीं होती थी क्योंकि उसकी कोई जरूरत नहीं होती थी। शिक्षकों को यह पता होता था कि बच्चे ठीक-ठाक हैं कहां, वे क्या सीख चुके हैं और अकादमिक जीवन और निजी जीवन में ठीक-ठीक किसलिए जूझ रहे

हैं। बच्चों को भी यह पता होता था कि वे क्या ठीक से समझ चुके हैं और किस पक्ष पर उन्हें और मेहनत करनी होगी। एक तरफ जहां हम यह कह सकते हैं कि वहां पर कोई परीक्षा नहीं होती थी, वहीं दूसरी ओर हम यह भी कह सकते हैं कि वहां हर दिन, हर पल एक आकलन-मूल्यांकन चल रहा होता था। शिक्षक बच्चों का अवलोकन करते थे, उन्हें निर्देश देते थे, उनसे कविताएं सुनते थे जिन्हें उन्होंने हृदयंगम कर लिया था (या अभी नहीं कर पाए थे)। सीखने के लिए ऐसी काफी सामग्रियों का इस्तेमाल किया जाता था जिसे बच्चे पढ़ें और समझें। अवलोकन और गतिविधियां इसलिए नहीं होती थीं कि किसी बारे में कोई आकलन किया जाए या बच्चों के ऊपर कोई टिप्पणी की जाए। बल्कि ऐसा बच्चों को मदद पहुंचाने के लिए किया जाता था ताकि वे इस मामले में और ज्यादा जागरूक हो सकें कि आगे बढ़ने के लिए उन्हें और क्या जानना चाहिए। जब कुछ वर्ष की तैयारी के बाद बच्चे तैयार हो जाते हैं तो स्कूल समाप्ति के बाद में आंध्रप्रदेश-कर्नाटक सरकार द्वारा आयोजित सार्वजनिक परीक्षा में बैठते हैं। उनमें से कुछ आगे पढ़ने कॉलेज चले जाते हैं और कुछ व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में दाखिला ले लेते हैं।

क्या इन पद्धतियों और प्रक्रियाओं को हम दोहरा सकते हैं ? हर बच्चा स्कूल में अपनी विशिष्ट इयत्ता के साथ आता है। स्कूल में काम कर रहे लोगों और शिक्षकों के लिए यह जरूरी है कि वे विचारों के माध्यम से बच्चों को सीखने में मदद करें, उनकी अपरीक्षित अनुभूतियों को देखें। कक्षा में अपनाए जाने वाले कौशल शिक्षकों की अंगुलियों पर होने चाहिए ताकि वे बच्चों की आवश्यकता के अनुसार अपने व्यवहार को ढाल सकें। अधिकतर लोगों का विकास ऐसे परिवारों से होता है जो बुनियादी तौर पर सत्तावादी होते हैं और उसके बाद स्कूलों में आते हैं जो एक बार फिर से उन पर एक अलग तरह का प्रभुत्व जमाता है। इस तरह के प्रभुत्व और शक्ति के चक्र से बाहर निकलने और ज्यादा समतावादी तरीके से काम करने के लिए पेशेवर ढंग से प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने होंगे। किसी भी सामान्य तथाकथित शिक्षक को मदद देने से वह एक अच्छा शिक्षक हो सकता है। नीलबाग में शिक्षक नजदीक के शहर मदनापल्ले से होते हैं और एक विशिष्ट प्रकार का शिक्षक बनने के लिए प्रशिक्षित किए गए होते हैं। हममें से प्रत्येक डेविड ऑसबरा नहीं हो सकता और ऐसा किसी का इरादा भी नहीं है लेकिन हममें से प्रत्येक खुद अपना 'डेविड' (रक्षक) हो सकता है और व्यवस्था के गोवालिथ (शैतान) के विरुद्ध लड़ सकता है ताकि अपने बच्चों के सीखने के लिए एक बेहतर वातावरण बना सके। ऐसा ही एक 'गॉवलिथ' यह धारणा है कि

सारे बच्चे एक ही चीज, एक ही समय में, एक ही तरीके से सीख सकते हैं। जबकि वे ऐसा नहीं कर सकते। हर बच्चा अलग तरीके से सीखता है और इसकी एक बड़ी तात्कालिक जरूरत है कि इस सिद्धान्त को अपने स्कूलों के संदर्भ में पहचाना जाए। (हिन्दू 11.01.2004 से साभार)

अनुवाद : अजय कुमार सिंह

नीलबाग के निहितार्थ

रोहित धनकर

कर्नाटक राज्य में एक गांव है रायलपाड। रायलपाड से लगभग 2 किलोमीटर दूर चारों तरफ बाड़ से घिरा लाल टायल वाले मकानों का एक समूह है इसे नीलबाग कहते है। नीलबाग को गांव भी कहा जा सकता है। पर इसे स्कूल कहना अधिक सही होगा क्योंकि नीलबाग उस स्कूल का नाम है जो इस बस्ती के अस्तित्व को औचित्य का नाम प्रदान करता है। नीलबाग हमारे सैकड़ों-हजारों स्कूलों से बहुत भिन्न है। विचारधारा में भी तथा अध्यापन विधियों में भी। यहां बच्चों व अध्यापकों का आपसी संबंध खुला व सहयोगियों जैसा है। यहां का वातावरण हमारे प्राचीन आश्रमों की झलक देता है पर साथ ही आश्रमों से भिन्न भी है।

यह, और इस-जैसे चार और स्कूल एक व्यक्ति के परिश्रम का परिणाम हैं। इस व्यक्ति को नीलबाग में सब 'अप्पा' कहते हैं, नाम है डेविड ऑसबरॉ। पर दुर्भाग्य, कि 8 अगस्त 1984 को उनका देहांत हो गया।

डेविड अब नहीं रहे। नीलबाग के लिए और उन चारों स्कूलों के लिए, जिन्हें डेविड ने आरंभ किया था, उनका देहान्त एक हृदयविदारक घटना है। पर उनके देहान्त का दुख इन्हीं लोगों तक सीमित नहीं है, वह हर व्यक्ति जो डेविड से कभी भी मिला है उनका मुरीद बन गया है।

डेविड के व्यक्तित्व के गुणों पर एक पूरा ग्रंथ लिखा जा सकता है। पर यहां उनके शिक्षा संबंधी कार्यों एवं विचारों पर लिखना अधिक संगत होगा। हालांकि एक छोटे लेख में उनके शिक्षादर्शन के साथ न्याय कर पाना संभव नहीं है फिर भी बहुत संक्षेप में मैं कुछ लिखना चाहूंगा।

वे जीवन में स्वतन्त्रता के कायल थे। अत: शिक्षा संस्थाओं में भी स्वतंत्रता

के समर्थक थे। यह स्वतंत्रता विचार व व्यवहार के स्तरों पर समान रूप से चलती थी। यही कारण है कि डेविड के सभी स्कूलों में बच्चों को बहुत स्वतंत्रता मिलती है। यहां तक कि कक्षा में आने-न आने की स्वतंत्रता भी उन्हें मिलती है। स्वतंत्रता अर्थात् अपने व्यवहार मे स्वयं सुविचारित निर्णय लेना। यह इसलिए कि किसी अधिकारिक सत्ता के भय से सद्व्यवहार को वे यथेष्ट नहीं समझते थे। उनका मानना था कि सत्ता के भय से किया गया सद्व्यवहार सत्ता के भय के अभाव में दुर्व्यवहार में बहुत आसानी से बदलता है। सुशिक्षित व्यक्ति को सद्व्यवहार के महत्त्व व मूल्य को समझ कर अपनाना चाहिए, भय के कारण नहीं। अत: इस गुण के विकास के लिए बच्चों को स्वतंत्रता मिलना आवश्यक है। स्वतंत्रता के उपयोग की एक आवश्यक शर्त है— सुविचारित निर्णय लेने की क्षमता का होना। बिना इस योग्यता के न तो स्वतंत्रता कायम रह सकती है और न ही वह उच्छृंखलता बनने से बच सकती है। अत: डेविड शिक्षा में स्वतंत्र व समालोचनात्मक विचार शक्ति को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मानते थे।

जब शाला में बालकों को स्वतंत्रता देते हैं तो प्रश्न यह उठता है कि क्या वे अध्ययन के लिए कक्षाओं में आएंगे? इसके लिए डेविड कुछ वस्तुओं को महत्त्वपूर्ण मानते थे। (क) छात्र-शिक्षक संबंध का आत्मीय व विश्वासपूर्ण होना। (ख) शाला के समस्त कार्यकलापों को रुचिकर बनाना। (ग) बच्चों को मानसिक योग्यतानुसार काम देना (घ) उनकी स्वाभाविक जिज्ञासा को विकसित करने के लिए नए-नए बौद्धिक अनुभव प्रदान करने वाले क्रियाकलाप। सैद्धांतिक दृष्टि से डेविड के लिए बच्चों को अभिप्रेरित करने के उपरोक्त साधनों पर निर्भरता एक तार्किक आवश्यकता थी। कारण यह है कि स्वतंत्रता को बरकरार रखते हुए, बिना दण्ड व पुरस्कार का उपयोग किए, प्रतियोगिता की भावना व परीक्षा अंक आदि के अभाव में अभिप्रेरण के नवीन तरीके खोजना अनिवार्य हो जाता है।

शिक्षा की प्रक्रिया को आनन्ददायी बनाने के लिए डेविड व्यावहारिक क्रियाकलापों को बहुत महत्त्वपूर्ण मानते थे। क्रियाकलाप, कि जिनके माध्यम से बच्चे अनुभव करके व आनंद प्राप्त करते हुए सीख सकें। इसी कारण डेविड के सभी स्कूलों में हस्तकलाओं को बहुत महत्त्व दिया जाता है। पर हस्तकलाओं के सिखाने में उनके शैक्षणिक महत्त्व को ध्यान में रखा जाता है। भावी जीवन में कर्मकार बनाना इसका उद्देश्य नहीं माना जाता। डेविड का कहना था कि हम खास कर्मकार में नहीं, सुविचारपूर्ण सुशिक्षित व्यक्तियों के विकास में रुचि रखते हैं। आगे वे क्या काम चुनते हैं— यह निर्णय वे स्वयं करेंगे। हमारा काम उनमें

यह निर्णय ले सकने की योग्यता का विकास करना है।

विज्ञान की शिक्षा में प्रयोगों का महत्त्व सभी स्वीकारते हैं। डेविड ने विज्ञान व पर्यावरण शिक्षा की अपनी लिखी पुस्तकों के हर पृष्ठ पर बच्चों के लिए सरल व रुचिकर प्रयोग दिए हैं।

स्वयं सीख व समझ सकने की योग्यता को डेविड शिक्षा का आवश्यक अंग समझते थे। उनका कहना था कि बच्चों को अपने आप अध्ययन करना आना चाहिए। परिस्थिति से, प्रयोगों के द्वारा, पुस्तकों से अपने आप सीख सकने की योग्यता का विकास आवश्यक है तभी उनकी शिक्षा पूर्ण होगी। अध्ययन व सीखने के लिए अध्यापन पर निर्भरता को वे शिक्षा के अधूरेपन की निशानी मानते थे। अत: अध्यापक का काम सीखने का वातावरण बनाना तथा आवश्यक सहायता करना है। पूर्वपाचित भोजन कभी पाचन संस्थान को समर्थ नहीं बनने देता।

डेविड बच्चों के शिक्षण में उनकी रुचियों व बौद्धिक योग्यताओं का ध्यान रखने के हिमायती थे। बच्चों की सीखने की गति समान नहीं होती। वे मानते थे कि बच्चे को अपनी गति से सीखने की छूट होनी चाहिए। तभी उनकी अध्ययन में रुचि बनी रह सकती है। इसी कारण डेविड के स्कूलों में कोई निश्चित कक्षाएं नहीं होतीं। कक्षा को डेविड काल्पनिक मानते थे। सभी बच्चे एक साथ बैठ कर अपने-अपने स्तर की पढ़ाई अध्यापक की सहायता से, पर अधिकतर स्वयंमेव करते हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि उपरोक्त मान्यताओं के प्रकाश में शिक्षा की प्रक्रिया में परीक्षा एक अनावश्यक व्यवधान मात्र रह जाता है। डेविड परीक्षाओं के विरोधी थे। उनके विचार से सारा का सारा मूल्यांकन तन्त्र 'घनचक्कर की पहेली योजना' से अधिक कुछ नहीं था।

बौद्धिक योग्यताओं के साथ-साथ डेविड नैतिक सौन्दर्यशास्त्रीय मूल्यों को भी अत्यधिक महत्त्व का समझते थे। उनके विचार से तथ्यों को कंठगत करने से कहीं अधिक महत्त्व नैतिक सौन्दर्यशास्त्रीय मूल्यों का विकास करना था। अत: कला व विचार-शक्ति के विकास पर वे बहुत बल देते थे। संगीत, ललित कलाओं व हस्तकलाओं का महत्त्व उनके स्कूलों में पुस्तकीय विषयों से किसी भी तरह कम नहीं है।

डेविड शिक्षा में प्रतियोगिता की भावना को शिक्षा व व्यक्तिगत विकास दोनों के लिए घातक समझते थे। उनके विद्यालयों में जोर प्रतियोगिता पर नहीं, सहयोग पर दिया जाता है। इसी कारण वहां बच्चों की आपस में तुलना कभी नहीं की जाती। हर बच्चे को अपना काम सर्वोत्तम रीति से करने के लिए उत्साहित

किया जाता है, किसी दूसरे बच्चे से अच्छा करने के लिए नहीं।

उपरोक्त मान्यताएं लगभग सभी शिक्षाशास्त्रियों की होती हैं। हम सभी जब शिक्षा पर विचार-विमर्श करते हैं तो इन्हें सैद्धांतिक स्तर पर स्वीकारते हैं। पर इन मान्यताओं के आधार पर विद्यालय चलाना पड़े तो व्यावहारिकता के नाम पर इनमें आमूल परिवर्तन कर देते हैं। डेविड ने इन मान्यताओं को, बिना तथाकथित व्यावहारिक समझौते किए, कार्यरूप में परिणत किया है। यह उनकी बहुत बड़ी सफलता है।

ऊपर सभी जगह मैंने डेविड की शिक्षा संस्थाओं के लिए स्कूल या विद्यालय शब्द का प्रयोग किया है। यह विद्यालय के विस्तृत अर्थों में है। अध्ययन के स्तर का इससे संबंध नहीं है। यह मुझे इस कारण लिखना पड़ रहा है कि हमारे यहां स्कूल माने अधिक से अधिक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय। डेविड के विद्यालय में इससे आगे तक का अध्ययन कराया जाता है।

यह शिक्षा के क्षेत्र में डेविड के काम व विचारों की एक अधूरी झलक मात्र है। विस्तृत विवेचना करना यहां ध्येय भी नहीं था। डेविड शिक्षा के क्षेत्र में एक प्रकाश स्तंभ थे। वे अब नहीं रहे। पर उनके कार्य और विचार मौजूद हैं और रहेंगे। उनके विचार शिक्षा के क्षेत्र में हमारा मार्ग-दर्शन बहुत आगे तक कर सकते हैं।

नीलबाग एक छोटा-सा विद्यालय था लेकिन उसके पीछे एक व्यापक दृष्टिकोण और सुन्दर सपना भी था। यह दृष्टिकोण किसी अकेले व्यक्ति ने बैठकर एक बार में नहीं गढ़ लिया था। इसमें विश्व भर के शिक्षाशास्त्रियों के चुनिंदा विचार, मानव एवं संस्कृति की एक तस्वीर और विभिन्न शैक्षिक प्रयोगों के अनुभव थे। इन विचारों और अनुभवों को एक सपने में संजोने वाले व्यक्ति की अपनी शख्सियत इस संयोजन से भी साफ झलकती है और इस सपने को साकार करने के लिए किए गए प्रयत्नों में भी। डेविड ऑसबरॉ के अपने जीवनानुभव, उनके अपने रुझान एवं अभिरुचियां और विभिन्न कलाओं और हस्तशिल्पों (गायन, अभिनय व चित्रकला से लेकर कुम्हारी एवं बढ़ईगिरी तक) में उनकी निष्णातता की स्पष्ट छाप नीलबाग पर देखी जा सकती थी। इसीलिए नीलबाग बाहर से देखने वालों को उनके व्यक्ति के विस्तार जैसा ही नजर आता था। और यहीं से उस प्रश्न का जन्म होता है जो नीलबाग के बारे में डेविड से बार-बार पूछा गया— क्या ऐसे विद्यालय अन्यत्र एवं अन्य लोगों द्वारा चलाए जाने संभव हैं?

डेविड ने शब्दों और कर्म दोनों के माध्यम से इस प्रश्न का उत्तर देने की कोशिश की। यह प्रश्न अपने आप में एक उचित प्रश्न था और है। पर साथ ही मुझे लगता है, इस प्रश्न में नीलबाग एवं डेविड के व्यक्तित्व के एक पहलू की अनदेखी भी निहित है और यह प्रश्न डेविड के प्रति थोड़ा अन्याय भी करता है।

यह प्रश्न नीलबाग एवं नीलबाग जैसे अन्य विद्यालयों से लगातार पूछा जाता रहा। और आजकल तो जिस प्रयास की प्रतिकृति न हो सके, जिसका व्यापकीकरण न हो सके, उसे किसी काम का ही नहीं माना जाता है। अत: यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। इस पर थोड़ा विचार करना ठीक रहेगा। जब कोई यह पूछता है कि क्या ऐसे विद्यालय अन्य लोगों द्वारा चलाए जा सकते हैं। तो पूछने वाला यह मानता है कि शिक्षा का एक स्वीकार्य मॉडल मिल गया है और अब इसकी अनुकृति आवश्यक है। यह अनुकृति करने के लिए उन क्षमताओं और गुणों वाले व्यक्ति चाहिए जो मूल मॉडल के रचने वाले में थे। अर्थात् व्यक्तियों की भी अनुकृतियां चाहिए। पर ऐसे व्यक्ति बनाना तो संभव नहीं है क्योंकि उस मूल रचयिता के व्यक्तित्व में तो बड़े दुर्लभ गुण हैं। समस्या यह है कि नीलबाग का तो सारा चिंतन प्रवाह ही इस अतार्किक 'तर्क-श्रृंखला' का विरोधी था। वहां तो अनुकृतियां करते जाने की बात ही नहीं थी। नीलबाग की मूल मान्यताओं, सिद्वातों और कार्यविधि का उपयोग करते हुए विद्यालय चलाने की बात तो की थी। पर वे नीलबाग की अनुकृति ही हों, ऐसा कोई दुराग्रह था ही नहीं। यह अलग बात है कि नीलबाग की अनुकृति के प्रयास-कुछ हद तक सफल प्रयास हुए है। पर व्यक्तिश: मैं नहीं मानता कि डेविड का कोई ऐसा आग्रह था। वे तो यह मानकर चलते थे कि ऐसे शिक्षक बनाए जा सकते हैं जो सोच सके, विद्यालय की परिकल्पना कर सकें, बच्चों को ठीक से पढ़ा सकें और साधन तथा अवसर उपलब्ध होने पर अच्छे विद्यालय चला सकें। ये विद्यालय नीलबाग जैसे ही हों यह जरूरी नहीं है। उन्होंने ऐसे शिक्षकों को प्रशिक्षित करने का प्रयास किया। और मैं मानता हूं कि वे किसी भी प्रशिक्षण संस्थान से अधिक सफल रहे। उनसे जिन लोगों ने प्रशिक्षण लिया या उनके साथ जिन लोगों ने यथेष्ट समय बिताया, उनमें से आधे से अधिक लोगों ने या तो अपने विद्यालय चलाए या शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत रहे और हैं। साथ ही इनमें से प्रत्येक व्यक्ति के काम में शिक्षा की गुणवत्ता एवं बच्चों के प्रति संवेदनशीलता पर आग्रह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। लीक से हटकर शैक्षिक समस्याओं के समाधान के प्रयास भी साफ नजर आते हैं। यहां पर यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि यह सारी प्रक्रिया पूरी तरह स्वत:स्फूर्त थी। डेविड अपना विद्यालय अपने धन से चलाते थे।

जब किसी ने शिक्षक-प्रशिक्षण के लिए आग्रह किया तो वे तैयार हो गए। किसी प्रकार के शुल्क आदि के बिना। यदि प्रशिक्षणार्थी को आर्थिक मदद देने के लिए तथा प्रशिक्षणोपरांत विद्यालय चलाने के लिए कोई धन और साधन देने को तैयार हो गया तो यह मदद सहर्ष स्वीकार की गई। यदि इसके लिए धन देने को कोई न मिला तो डेविड ने स्वयं प्रशिक्षण-भत्ता देना आरंभ कर दिया और विद्यालय चलाने के लिए वे धन उपलब्ध करवाने में जुट गए। बिना किसी बड़े तामझाम और सक्रिय रूप से प्रचारित परियोजनाओं के। डेविड के लिए शिक्षा के क्षेत्र में काम करते जाना जीवन की सहज प्रक्रिया का ही एक हिस्सा था।

यहां नीलबाग में शिक्षक बनने की प्रक्रिया के बारे में मैं कुछ व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर कहना चाहूंगा। मैं जिस क्षेत्र में काम करता हूं— प्राथमिक शिक्षा एवं स्वयंसेवी संस्थाओं का क्षेत्र— उसमें शिक्षण-प्रशिक्षण के संदर्भ में एक शब्दावली प्रचलित है— सहभागितापूर्ण प्रशिक्षण, आनुभविक प्रशिक्षण, सिद्धांतों/विचारों का समूह में से उभर कर आना, समूह में भागीदारीपूर्ण निर्णय-प्रक्रिया आदि-आदि। बहुत से लोग हैं जो इस शब्दावली को ठीक से समझते हैं और इसके साथ न्याय करने के लिए ईमानदारीपूर्ण प्रयत्न करते हैं। इनसे कहीं ज्यादा तादाद में वे लोग हैं जो इसे अनुकूलन एवं चालाकी से लोगो को नियंत्रित करने की तकनीक के रूप में काम में लेते है। डेविड इस शब्दावली का बिल्कुल उपयोग नहीं करते थे। लोगों को चालबाजी से नियंत्रित करने के वे सख्त खिलाफ थे, केवल बौद्धिक स्तर पर नहीं बल्कि भाव के स्तर पर भी वे इससे विकर्षित होते थे। पर जिसे वे सही दिशा मानते थे उस तरफ इंगित करने के उनके अपने तरीके थे।

इसके दो-तीन उदाहरण लेते हैं। मैं जब प्रशिक्षण के लिए नीलबाग पहुंचा तो बहुत ही सुन्दर हस्तलिपि में लिखा हुआ मेरा दिन भर का कार्यक्रम छात्रावास के पुस्तकालय में लगा हुआ था। सुबह छ: बजे से रात के आठ बजे तक मुझे कब पढ़ना है, कब विद्यालय में कक्षावलोकन करना है और कब हस्तशिल्प की कार्यशाला (बैठकबाजी वाली नहीं, ठोस औजारों को ठोस पदार्थ पर चलाने वाली कार्यशाला) में जाना है— सब उसमें लिखा हुआ था। यह कार्यक्रम मुझे डेविड से मिलने से पहले ही दिखा दिया गया था। इससे मुझे जो संप्रेपित हुआ, वह था : एक, काम की गंभीरता एवं मेहनत करने का आग्रह; दो, समय बर्बाद न करने का आग्रह; तीन, एक बंधे ढांचे में काम करने का निर्देश; तथा चार, मेरे वहां पहुंचने का महत्त्व है, यह कोई अनचाही महत्त्वहीन घटना नहीं है।

मैं सीधा विश्वविद्यालय से वहां गया था। विश्वविद्यालय में एक निहायत

ही अराजक अनौपचारिक मंडली का सदस्य रहा था। अतः तीसरी बात, बंधे ढांचे वाली बात, बंधे ढांचे में काम करने का निर्देश मुझे बहुत अखरी। शाम के पांच बजे की चाय पर डेविड से मुलाकात में बाकी तीनों चीजों का सदृढ़ीकरण हुआ पर बंधे ढांचे में काम करने वाली तीसरी बात अपने आप ही तिरोहित हो गई। क्यों? अब सोचता हूं; इस भावना के तार्किक/तथ्यात्मक आधार क्या थे? ठीक से नहीं पता। पर मुझे लगता है कि डेविड की व्यक्ति की गरिमा एवं स्वतंत्रता की आडम्बरहीन स्वीकृति, जो उनके हर क्रियाकलाप में परिलक्षित होती थी, और सहज आत्मीयता से ढांचे की बाध्यता का कोई मेल नहीं बैठा। अतः बिना शब्दों के उपयोग के यह 'बाध्यता' मात्र एक सुझाव बन कर रह गई। आगे इस कार्यक्रम के साथ मैंने न्याय और अन्याय दोनों किए और कार्यक्रम के अनुसार न चलने को लेकर कोई वितंडा नहीं बना। यह कार्यक्रम मेरी सहभागिता या सहमति से नहीं बना था पर आगे इसमें फेरबदल की खूब गुंजाइश थी।

डेविड का मानना था कि शिक्षा में संगीत बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्रशिक्षण के प्रथम सप्ताह में ही स्पष्ट हो गया कि मेरी न तो संगीत में रुचि है न ही समझने की तमीज। डेविड ने एक दिन मेरे से कहा कि वे बच्चों को सुब्बालक्ष्मी द्वारा गाया गया मीरा का भजन 'म्हानै चाकर राखो जी...' सिखाना चाहते हैं। उनके पास इसका रिकार्ड तो था पर शब्द नहीं थे। यदि लिखित शब्द सामने हों तो बच्चों को सीखने में आसानी रहेगी। क्या मैं रिकार्ड सुनकर भजन की एक लिखित प्रति तैयार कर सकता हूं। मैं मान गया। डेविड के पुस्तकालय में बैठा कर मुझे रिकार्ड, ग्रामोफोन और कागज पेंसिल दे दी गई। ग्रामोफोन को खूब संभाल कर काम में लेने की खूब सारी विनोदपूर्ण हिदायतें भी दे दी गईं। (डेविड का विश्वास था कि जो चीज खरीदी जाए वह कभी खराब नहीं होनी चाहिए और जीवन भर चलनी चाहिए।) 'म्हानै चाकर राखोजी' मुझे 8-10 बार सुनना पड़ा। ध्यान लगाकर। जब मैं उठा तो मेरे पास इसकी एक साफ-सुथरी प्रतिलिपि थी और दिमाग में यही भजन अपने संपूर्ण माधुर्य एवं संगीत के जादू के साथ गूंज रहा था। एक ही बैठक में बिना किसी तकनीकी ज्ञान के मुझे शास्त्रीय संगीत के भावात्मक माधुर्य और बौद्धिक आलोक का भान हो गया था।

एक बार ज्यामिति में बच्चों को कुछ आकृतियां बनाना और उनको चाहे गए अनुपातों में विभाजित करना सिखा रहे थे। उदाहरणार्थ वर्ग की परिधि को बराबर के 5, 6, या 4 भागों में बांटना। ऐसी ही तीन चार चीजें थीं। कक्षा के बाद शाम की चाय के वक्त डेविड ने मेरे से कहा कि वे आकृतियों के विभाजन का तरीका तो जानते हैं पर इसके सही होने का गणितीय आधार नहीं जानते। क्या बच्चों को

वह आधार समझाने में मैं मदद कर सकता हूं। गणित मेरा विषय था पर ये आधार मुझे भी पता नहीं थे। मैंने कुछ समय मांगा। उन सारी तकनीकों के गणितीय आधार खोजने में एवं उनको शुद्ध ढंग से लिखने में मुझे एक सप्ताह लगा। सारा शोध अपने आप करना पड़ा। जब बच्चों को समझाने लगा तो वे कुछ नहीं समझे। एक लम्बा-चौड़ा अवधारणात्मक विश्लेषण करना पड़ा। बच्चों के पास उपलब्ध अवधारणाओं से लेकर उन शुद्ध गणितीय स्थापनाओं तक पहुंचने के लिए। कई सप्ताह मैं बच्चों को यही पढ़ाता रहा। अंत में गणितीय अवधारणाओं के तार्किक क्रम में विकास एवं बच्चों को आने वाली कठिनाइयों का मुझे अच्छा खासा अंदाज हो गया।

ऐसे दर्जनों उदाहरण प्रत्येक प्रशिक्षु के पास होंगे। यह डेविड का प्रशिक्षु को किसी विषय की गहनता में जाने के लिए बाध्य करने एवं समस्या सुलझाने का अभ्यास देने का तरीका था। इसके उपयोग के लिए प्रशिक्षु के रुझान, क्षमताओं एवं प्रकृति का ठीक अंदाजा लगा पाना आवश्यक है। कुछ लोगों को ऐसा लग सकता है कि यह तो लोगों को नियंत्रित करने का तरीका है। मेरा मानना है कि नियंत्रित करने की चालबाजी में समस्याएं गढ़ी जाती हैं। उनका दिखावा होता है। डेविड वास्तविक शैक्षिक प्रक्रियाओं में से वास्तविक समस्याएं निकाल कर सामने रखते थे। अतः यह शिक्षण कर्म में सामर्थ्य एवं रुचि के अनुसार अवसर जुटा देने का तरीका है।

प्रशिक्षण में निर्दिष्ट एवं अनुशासित दोनों ही प्रकार की पुस्तकें दी जाती थीं। उन पुस्तकों पर लिखना होता था और सप्ताह में दो बार गोष्ठियां होती थीं। मैं कोई डेढ़ माह तक दोनों प्रकार की पुस्तकों की अनदेखी करके सुकरात के संवाद और निकोलाई गोगोल के उपन्यास पढ़ता रहा। इसके लिए मुझे कोई निर्देश या प्रताड़ना नहीं मिली। उलटे गोष्ठियों में सुकरात के संवादों पर, उनके शैक्षणिक महत्त्व पर भी चर्चा होने लगी। एक तरह से प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम बदल गया। ऐसा हस्तशिल्प में बनाई जाने वाली चीजों एवं अन्य मामलों में भी होता रहता था। उद्देश्य किसी खास विचार में दीक्षित करना नहीं, बल्कि विचार की सामर्थ्य विवेक और उसका व्यावहारिक कार्य से संबंध समझना था। अतः अनुशंसित पुस्तक बदलने से कोई बड़ा प्रभाव पड़ने की संभावना नहीं थी। पाठ्यक्रम में निर्दिष्ट पुस्तकें दर्शन एवं मनोविज्ञान पर थीं। उनका पढ़ना आवश्यक था पर उसे आगे पीछे करने में कोई समस्या नहीं थी।

शैक्षणिक प्रक्रियाओं के प्रति यह सहज भाव विद्यालय में भी परिलक्षित होता है। इसी अंक में प्रकाशित 'नीलबाग में शिक्षा' लेख इस दृष्टि की बहुत

स्पष्ट अभिव्यक्ति करता है। यह अंग्रेजी दस्तावेज 'एजुकेशन इन नीलबाग' के 1976 के आस-पास तैयार किए गए स्वरूप का अनुवाद है। इसी का एक और स्वरूप 1984 में कुछ संशोधन आदि के साथ तैयार किया गया था। हमने यहां जानबूझ कर 1976 वाले दस्तावेज का उपयोग किया है। उस वक्त विद्यालय को चलते केवल चार वर्ष हुए थे। इस काम के साथ विकसित होती विभिन्न योजनाओं के अंकुरण की झलक इस दस्तावेज में मिलती है। इस दस्तावेज में शिक्षाक्रम के प्रति जो दृष्टि उभरती है वह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। एक सक्षम और कल्पनाशील शिक्षक, जिसकी शिक्षा के व्यापक उद्देश्य और सीखने की प्रक्रिया के बारे में दृष्टि साफ हो, लगभग हर गतिविधि को, एक शैक्षणिक गतिविधि बना सकता है। बच्चों को उसके लिए प्रेरित कर सकता है। इसके विपरीत आज चारों तरफ के परिदृश्य पर दृष्टि दौड़ाएं तो यह भी साफ हो जाता है कि किस प्रकार हर शैक्षणिक गतिविधि को उसमें से उत्साह और शिक्षण के तत्वों को गायब करके एक टोटका बनाया जा सकता है। खण्ड-खण्ड शिक्षाक्रम को गढ़ने के इस दौर में हर गतिविधि में विविध क्षमताओं के विकास की संभावना देखना और हर गतिविधि को शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों से जोड़ने की काबिलियत और इस दृष्टि पर आधारित विद्यालय चलाने की सामर्थ्य की बात करना बहुत लोगों के गले शायद न उतरे। पर इस तरह प्रयत्नों के बिना शिक्षा का काम बहुत उबाऊ और निरर्थक हो जाएगा।

अतः नीलबाग के संबंध में सवाल अनुकृति या व्यापकीकरण का नहीं उठता। सवाल इस बात का उठता है कि क्या इस तरह के प्रयत्न कुछ लोगों को जीवन दृष्टि विकसित करने में मदद कर सकते हैं जो उसमें से शिक्षा व विद्यालय की परिकल्पना बना सकें। उसे साकार रूप दे सकें। और ये परिकल्पनाएं अलग-अलग प्रकार की हो सकती हैं। कुछ का व्यापकीकरण संभव हो सकता है और कुछ का नहीं। पर प्रत्येक में मानव जीवन की गरिमा, विवेक, स्वतंत्रता, संवेदनशीलता और जो कुछ भी किया जाए उसमें उत्कर्षता पर आग्रह हो।

मार्गदर्शक हैं ये किताबें

हृदयकांत दीवान

डेविड ऑसबरॉ की किताबों के बारे में बात उनके शीर्षकों से ही शुरू करना उचित होगा। किताबों के शीर्षको के कुछ उदाहरण हैं— 'सोचना और करना' (थिंकिंग एंड डूइंग), 'चलो हम विज्ञान खोजें' (लेट्स डिस्कवर साइंस), 'जीने के बारे में सीखना' (लर्निंग अबाउट लिविंग)। सभी शीर्षक गतिशील हैं और बच्चे (सीखने वाले) के दृष्टिकोण पर केन्द्रित है। शीर्षक पढ़कर ही इसके पाठ्य पुस्तक होने का आभास नहीं होता और न ही किसी चीज का जो दोहराए जाने वाले अभ्यासों से भरी वर्क बुक (कार्य-पुस्तक) के समान हो।

'चलो हम विज्ञान खोजें' शीर्षक के पीछे एक दर्शन है, बच्चे के केन्द्र में होने का, खोजी होने का व ज्ञान का सृजन होने का। यह शीर्षक विज्ञान सीखने का नहीं है, इसमें मात्र इतनी बात नहीं है कि बच्चों को गतिविधियां या प्रयोग दिखाकर सिखा दें। जो सिखाने वाला चाहता है उसके लिए प्रयोग बनाएं और बच्चों को दिखाएं या करवाएं और उचित निष्कर्ष बता दें, जो पहले से तय हैं। विज्ञान खोजने के पीछे और ही मंशा है और इसमें बच्चा (सीखने वाला) प्रमुख है। जो जानता है वह पूरी तरह तय नहीं है और बदल सकता है। इसमें शिक्षक और बच्चे के संबंधों के बारे में भी एक संदेश है— दोनों मिलकर खोजेंगे। शिक्षक ज्ञान का भंडार व दाता नहीं है बल्कि बच्चे के साथ सीखने वाला है।

'जीवन के बारे में सीखना', 'जीना सीखना' और जाने कितने और संभव शीर्षकों से तुलना करें तो एक बात यह लगती है कि जीने के बारे में सीखना एक ऐसा नाम है जो सीखने वाले को बांधता नहीं, उपदेश नहीं देता और तथ्यों से बहुत ठुंसा होने का आभास नहीं देता।

डेविड ऑसबरॉ की किताबें उठा कर खोलते ही उनमे खुलेपन का अहसास होता है। उनके स्वरूप से ही लगता है कि वह बच्चे को कुछ करने को उकसा रही हैं, उसे निष्क्रिय नहीं रहने देना चाहतीं। उन्हें पाठ्यपुस्तकें नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह सामान्य पाठ्य-पुस्तकों के समान भरी-भरी सी और अपने अपने आप में संपूर्ण नहीं लगतीं। उन्हें कार्य-पुस्तकें नहीं कह सकते क्योंकि सामान्य कार्य-पुस्तकें बच्चों को सिर्फ निर्देश देती हैं, एक ही क्रिया को बहुत बार दोहराने की।

डेविड की किताबों में जो स्कूल की और सीखने के तरीके की कल्पना है, वह सामान्य पाठ्यपुस्तकों से बहुत अलग है। सामान्यत: पाठ्यपुस्तकें बच्चे को जानकारी देती हैं, समझाती हैं, सही उत्तर बताती हैं और कहती हैं यदि तुम ऐसा करो तो देखोगे कि ऐसा होगा। डेविड की किताब बहुत जानकारी नहीं देती, बच्चे को कहती है कि तुम करो और मुझे बताओ कि क्या हुआ; तुम खोजो, पता करो और समझो। यह अन्तर डेविड की किताबों व सामान्य पाठ्यपुस्तकों के हर टुकड़े से दिखता है। डेविड की किताबों की सामग्री का चुनाव, भाषा व प्रस्तुति चाहे वह तथ्य हों, तर्क हों या निर्देश हों, इस प्रकार रखी गई हैं कि वह बच्चे को रोचक लगे व उसे बच्चा पढ़ कर समझ सके। किसी भी किताब की भाषा के बारे में बात करते समय इसकी विषयवस्तु के बारे में भी विस्तार पर मुश्किल से चर्चा कर सकते हैं। किन्तु सिर्फ लिखने के लहजे व भाषा के प्रकार और उसकी गुणवत्ता को ही देखें तो कुछ बातें स्पष्ट दिखती हैं—

1. डेविड ने किताबें इस प्रकार लिखने का प्रयास किया है कि उन्हें बच्चा स्वयं पढ़कर समझ सके। पूरी किताब बच्चे को संबोधित है और वह भी एक मित्रता के लहजे में, एक स्वाभाविक बराबरी के संबंध के लहजे में।
2. इन किताबों के चित्रों के बारें में कई बातें उल्लेखनीय हैं, एक बात यह है कि लिखते समय यह ध्यान रखा गया है कि चित्रों का उपयोग लिखित भाषा को पढ़ने में मदद देता है, उनमें ऐसा अन्तर्संबंध है कि कम शब्दों में और कम जटिल व्याख्याओं के साथ चित्रों को जोड़ कर कई मुश्किल अवधारणाओं का अहसास दिया गया है।
3. ऐसा नहीं है कि किताब में नए शब्द नहीं हैं या तर्क नहीं हैं और उसमें सिर्फ अस्वाभाविक रूप से रचे गए छोटे-छोटे शब्दों वाले छोटे-छोटे वाक्य हैं, लेकिन किताब को स्वाभाविक तौर पर बच्चे के लिए लिखा गया है जिससे बच्चा किताब के संदर्भ से नए शब्द सीख सके, निर्देश समझ कर खुद काम कर सके।
4. किताबों में एक बात और दिखती है, इनमें लिखित सामग्री और चित्रों का अनुपात व इन दोनों को मिलाकर खाली जगह से अनुपात सामान्य पाठ्यपुस्तक से बहुत फर्क है। ऑसबरॉ की हर किताबों के सेट (सीरीज) में यह धीरे-धीरे बदलता जाता है। यह भी बदलता है कि हर पन्ने पर कितने नए शब्द हैं किन्तु यह बढ़ना भी स्वाभाविक रूप से बच्चे के लिए लिखा जाता है, जो सामान्य पाठ्यपुस्तक से बहुत अलग है।

अगर इस बात को सोचें कि यह किताबें बच्चे को क्या मानती हैं तो एक बात साफ दिखती है कि यह किताबें बच्चे को एक स्वतंत्र सीखने वाला मानती हैं, उसे सोचने के, समझने के व नई चीजें बनाने के लिए सक्षम मानती हैं। वह बच्चे की इन क्षमताओं को नजरअंदाज कर दोहरवाना और बताना महत्त्वपूर्ण नहीं मानतीं।

जैसे इंजिन के बारे में जो इकाई है, उसमें दो वाहन हैं, दो तरह के इंजिन का चित्र है और सवाल है कि आप जो भी इंजिन जानते हैं, उनकी सूची बनाएं। इसके लिए इन शीर्षकों का इस्तेमाल करें— भाप, पेट्रोल, तेल, बिजली। फिर एक भाप के इंजिन का मॉडल बनाने के निर्देश हैं। जो इंजिन के चित्र हैं उनमें से एक में तीर के निशान भी लगे हैं।

इसमें कई बातें हैं। पहली यह आवश्यक नहीं है कि सभी बच्चे एक ही तरह सोचें और न ही यह कि हर कक्षा में एक-सी प्रक्रिया हो, दूसरी यह कि ऐसा दबाव नहीं है कि कोई बात याद ही कर लेनी है या कोई परिभाषा समझ ही लेनी है। यह भी अपेक्षा नहीं कि बच्चे को यह समझ में आए कि तीरों के निशान क्या दर्शा रहे हैं। पर यह जरूर है कि बच्चा इनसे जूझेगा, कुछ समझेगा, कुछ नहीं समझेगा और जूझता हुआ बाद में समझेगा। पर इतना जरूर हो गया कि बच्चे का, उस पाठ से, उस बात से जुड़ाव बन गया और वह एक रोचक जानी जा सकने वाली चीज बन गई। इसी उदाहरण की तरह ही लगभग अधिकांश पन्नों के बारे में व्याख्या दी जा सकती है, उनकी संभावनाओं को टटोला जा सकता है।

हर पन्ने पर इसी तरह के पूरे अभ्यास जिन्हें आप वर्षों के अंतराल के बाद भी कई बार कर सकते हैं और हर बार आप और नई बातें सीखेंगे।
किताब के हर पन्ने में जगह है बच्चे के लिए—

- सोचने की, ढूंढने की।
- अपनी बात बताने की, चित्र में, लिखकर, साथियों से चर्चा में अपने

अनुभव को जोड़ कर उसे शामिल करने की, अपने आस-पास को ज्यादा बारीकी से देखने की।

- समस्या हल करने के प्रयास की।
- पढ़कर समझने की, चित्र समझने की व उससे अवधारणा समझने की।
- अपने हाथ से कुछ बनाने की। आस-पास बिखरी सामग्री का उपयोग सीखने की।
- कई चीजों का अनायास ही अभ्यास करने की, बगैर उनके बारे में ज्यादा चिंतित हुए।

वैसे तो इनमें से हर बात महत्त्वपूर्ण है और उसे विस्तार से समझाने से ही पूरा दर्शन स्पष्ट होगा किन्तु इस सब में जो एक खास बात लगती है वह यह है कि सीखना कोई क्रमिक, पहले से प्रोग्राम किया हुआ यांत्रिक कार्य नहीं है। स्वाभाविक परिस्थितियां जिनमें बच्चों के लिए शामिल हाने के मौके हों, में ही वह सीख सकता है। अगर वह तनाव में है और सीखने वाली सामग्री के बोझ से दबा है तो वह आसानी से सीख नहीं पाएगा, जबकि घर में स्वाभाविक रूप से वह बहुत कुछ सीख लेता है।

डेविड की किताबें बहुत वैज्ञानिक, बहुत क्रमबद्ध और सीखने के पूर्व निर्धारित व अपेक्षित क्रम के आधार पर बनी पुस्तकों पर एक बहुत सटीक प्रश्नचिन्ह लगाती हैं। इन किताबों में लचीलापन, एक निश्चित क्रम से बंधन मुक्ति और खुलापन है— कई संभव दिशाओं से, कई संभव दिशाओं में बढ़ने का, और हर बच्चे के लिए अपने ढंग से पन्ने पर कुछ करने की जगह है व अपने ढंग से और सीखने की भी।

डेविड की किताबें स्वाभाविक परिस्थितियां निर्मित करने की कोशिश करती हैं। वे सीखने के विषयों में बंटी नहीं हैं और वह सब सामने रखती हैं जिससे कि उस परिस्थिति में बच्चा जूझ सकता है। इसमें हर पन्ने पर सभी विषय करवाने की भी कोशिश नहीं लगती, जिस पर जो अभ्यास करवाया जा सकता है वही अभ्यास रखा है।

डेविड की किताबों पर बात सिर्फ उनके स्वरूप पर आधारित नहीं है, ऐसा कई बातों से लगता है। वे रंगीन, चिकनी जिल्द वाली नहीं हैं, किताब के अंदर भी रंगीन चित्र नहीं हैं। यह सवाल सोचने के लिए अच्छा है कि डेविड ने ऐसा क्यों किया? दूसरी तरफ स्वरूप के अलावा किताब में कई बातें हैं जो शिक्षा के दर्शन से जुड़ी हैं। जैसे बच्चे और शिक्षक का संबंध, बच्चे और पुस्तक का संबंध,

बच्चे व स्कूल का संबंध, स्कूल व परिवेश का उपयोग, बच्चे के उत्साह सृजन व कल्पना का स्कूल में उपयोग परिलक्षित होता है कि हम बच्चे को क्या बनाना चाहते हैं व उसका कैसा संबंध परिवेश में जोड़ना चाहते हैं।

आखिर में एक और बात कहना जरूरी है। डेविड की किताबों में जगह की समझ व उससे संबंधित सभी क्रियाओं व परिवर्तनों पर बहुत जोर है। चित्र में परिप्रेक्ष्य समझना, विभिन्न तरह के चित्र समझना व बनाना (नामांकित चित्र, तीर वाले चित्र भी) नक्शे समझना व बनाना, लिखित सामग्री का चित्रों व नक्शों से संबंध आदि पर जोर है। एक ऐसा क्षेत्र जिसे बिल्कुल ही छोड़ दिया जाता है उस पर बहुत ध्यान दिया गया है। डेविड ने स्पेस से संबंधित क्षमताओं का विकास करने के लिए बहुत से भूलभुलैया भी शामिल किए हैं। कुल मिलाकर ये किताबें एक भिन्न तरह के स्कूल की कल्पना से प्रेरित हैं और उस दिशा में एक सक्षम प्रयास भी। आज के संदर्भ में सब जगह बच्चों को केन्द्र में रखने की बात हो रही है, उन्हें सोचने व जगह देने की बात है और सीखने की स्वाभाविक परिस्थितियों का नाम जोर-शोर से लिया जा रहा है, यह किताबें हमारे लिए मार्गदर्शक हो सकती हैं।

ये किताबें किन्तु एक अलग शिक्षण व्यवस्था की भी मांग करेंगी, जिसमें मूल्यांकन, शिक्षक व पुस्तक का संबंध, शिक्षक को स्वतंत्रता व लचीलापन, शिक्षक प्रशासन संबंध, शिक्षक प्रशिक्षण, कक्षा का ढांचा, स्कूल के अनुशासन का अर्थ, सीखने का अर्थ आदि सभी महत्त्वपूर्ण सवालों पर धीरे-धीरे सोच बनानी पड़ेगी व इनमें परिवर्तन करना पड़ेगा। पर क्या यह सब अब जरूरी नहीं है?

अगर यह सब पढ़कर आप सोचें कि यह तो समीक्षा के स्थान पर विज्ञापन हो गया तो शायद सही होगा। मैंने डेविड की किताबों से बहुत कुछ सीखा है और मुझे यकीन है कि प्राथमिक शालाओं में पढ़ रहे बच्चे भी इनसे बहुत कुछ सीख सकते हैं। जो लोग पाठ्यक्रम बनाने व किताबें लिखने में जुटे हैं उन सभी के लिए यह बहुत आवश्यक उदाहरण हैं। बिना बहुत से रंगों के, सिर्फ रेखाचित्रों से भी आकर्षक किताब बनाई जा सकती है और उसमें बच्चे को करने को बहुत कुछ छोड़ा जा सकता है। किन्तु जैसा मैंने कहा, ऐसी किताब को इस्तेमाल करने के लिए शिक्षा के ढांचे को और उससे जुड़े तामझाम को भी मेहनत करनी पड़ेगी। जब ऐसा होगा तब इन किताबों में परिवर्तन की आवश्यकता पड़ेगी और इसकी कमजोरियां सामने आएंगी, फिलहाल तो यह एक आदर्श हैं जिससे हम सीख सकते हैं।

डेविड की किताबें : एक विहंगम दृष्टि

राजाराम भादू

डेविड ऑसबरॉ द्वारा रचित पाठ्यपुस्तकों पर विचार करते हुए उनके शिक्षा-दर्शन को ध्यान में रखना बहुत जरूरी है और दुनिया के महान शिक्षा-चिंतकों की तरह डेविड भी मानते थे कि शिक्षा का लक्ष्य व्यक्ति का समेकित विकास है। शिक्षा का मूल्यवान प्रकार्य कैसे सफलतापूर्वक सम्पन्न हो सकता है— यही डेविड के शिक्षा प्रयोग की मूल चिंता है जिससे वे आजीवन सन्नद्ध रहे। उनके द्वारा रचित पाठ्यपुस्तकें इस शिक्षा-प्रयोग की बेहतरीन उपज हैं।

चूंकि डेविड के लिए शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य बच्चों को उनकी सामर्थ्य के अनुसार बेहतरीन शिक्षा दे पाना था जिससे उनकी तमाम ऊर्जा और संभावनाओं को विकसित होने का मौका मिले— वे चीजों को समझ सकें, कह सकें, स्वयं को अभिव्यक्त कर सकें। इस तरह देखें तो हम यह कह सकते हैं कि डेविड का शैक्षिक उपक्रम व्यक्तित्व में तीन प्रमुख गुणों के विकास पर सर्वाधिक जोर देता है— सृजनशीलता, स्वाध्याय और सौंदर्यबोध। इसीलिए बच्चे की आरंभिक शिक्षा के तौर पर भी डेविड का शैक्षिक फलक अत्यंत व्यापक था, जिसमें भाषा-शिक्षण से दर्शन तक और संगीत से बागवानी तरह विविध क्षमताओं, कौशलों और कलाओं को समाहित किया गया था। पुस्तकों की इस शिक्षण-प्रक्रिया में अहम् भूमिका थी।

डेविड के लिए शिक्षण-प्रक्रिया का एक प्रमुख चरण वहां जाकर पूरा हो जाता था जहां शिक्षार्थी स्वयं सीखने लगे, अपनी सर्जना को विकसित करे, जीवन और परिवेश के मूल प्रश्नों के खुद उत्तर खोज सके तथा प्रकृति और सौंदर्य का आस्वादन कर सके। इसलिए डेविड के यहां शिक्षा के आरंभिक, माध्यमिक और

उच्च शिक्षा जैसे काल विभाजन नहीं हैं। शिक्षार्थी इस मुकाम तक बिना शिक्षक और पुस्तकों की मदद के नहीं पहुंच सकता। इस प्रक्रिया में पुस्तकें दुहरी भूमिका निभाती हैं—

- पाठ्यपुस्तकों के रूप में सीखने और अभ्यास की प्रक्रिया का माध्यम।
- स्वतंत्र रूप में ज्ञानार्जन या सौंदर्यबोध के विकास हेतु।
- स्वाध्याय का माध्यम।

भारत में शिक्षा के नियोजन को डेविड सख्त आलोचनात्मक नजरिए से देखते थे। शिक्षा का अधिक्रमिक तंत्र शहरी अभिजात वर्ग का वर्चस्व स्थापित करता है। एक ऐसी शिक्षा-प्रणाली जो अधिकांश ग्रामीण बच्चों को प्राथमिक शिक्षा पूरी करने से पहले ही शिक्षा-धारा से बाहर कर देती थी। डेविड के लिए 'शिक्षा के ग्रामीण पाठ्यक्रम' का कोई अर्थ नहीं था। वे इसे 'ग्रामीण आबादी को शिक्षा से महरूम रखने' की पांच प्रतिशत शहरी लोगों की साजिश मानते थे। उनका आरोप था कि शिक्षा का पाठ्यक्रम व समूची योजना पांच प्रतिशत शहरी संभ्रांत वर्ग के हितों को ध्यान में रखकर तैयार की जाती है।

जब डेविड पर यह आरोप लगने की बात कही गई कि वे बच्चों को गांव से दूर कर रहे हैं तो उनका जवाब था, "मैं लोगों को चालाकी से प्रभावित करने के लिए यहां नहीं हूं।" यदि गांव के बच्चे का दृष्टिकोण पढ़ाई के बाद मोहनजोदड़ो से वर्तमान और नीलबाग से फ्रांस तक व्यापक बनता है तो उसे अपनी जिन्दगी के मसलों पर खुद निर्णय लेने का अधिकार है। डेविड के शिक्षा-दर्शन में गांव-शहर के बच्चों के लिए कोई भेद नहीं था। उनकी पुस्तकें भी इसका प्रमाण हैं। डेविड को बच्चों की जन्मजात संभावना पर बहुत भरोसा था। वे मानते थे कि बच्चे बहुत जिज्ञासु होते हैं, उन्हें खेल बहुत पसंद आते हैं और वे खेलने सहित विभिन्न कामों में भरपूर आनन्द लेते हैं। जब वे अपनी क्षमताओं को पहचान लेते हैं तो नए-नए कौशल अर्जित करने की कोशिश करते हैं। डेविड की मान्यता थी 'मूलतः सबसे जरूरी बात है बच्चों में सीखने की ललक पैदा होना, उसके बाद वे स्वतः सीखने-पढ़ने लगेंगे।' इस मन्तव्य से डेविड ने स्कूल में नए आने वाले बच्चों के लिए कई पुस्तकें तैयार की हैं। चूंकि बच्चों में सीखने की ललक पैदा करने और पुस्तकों को कैसे काम में लिया जाए— यह बताने में शिक्षक की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, इसलिए इन पुस्तकों में डेविड, शिक्षक से गंभीर संवाद करते हैं।

इस प्रकार पाठ्यपुस्तक के रूप में पुस्तक सीखने का माध्यम बनती है। यह बच्चे में सीखने की ललक पैदा करने, उसे बनाए रखने और सीखने की उत्प्रेरणा

का काम करती है। शिक्षक की भूमिका मुख्यतः यह सुनिश्चित करना है कि पुस्तक का सही उपयोग हो सके। कुल मिलाकर पाठ्यपुस्तकें सीखने-सिखाने के लिए एक माध्यम भर हैं। लेकिन पाठ्यपुस्तकें बच्चे को पुस्तकों के वृहत संसार की ओर भी ले जाती हैं। इस तरह ये सेतु-निर्माण का काम करती हैं।

डेविड पाठ्यपुस्तकों के महत्त्व और सीमाओं— दोनों को ध्यान में रखते हैं। शिक्षा का पूरा उपक्रम केवल पाठ्यपुस्तकों के भरोसे नहीं पूरा होता, इसलिए वे ऐसी अनेक गतिविधियों को शिक्षा-प्रक्रिया में अनिवार्य मानते हैं जो बच्चों में सृजनात्मकता और सौंदर्यबोध का विकास करती हैं। छोटे बच्चों के लिए इन बच्चों में कुछ भी खुद रचने का शौक जन्मजात होता है। उन्हें गाना, नाचना, नाटक करना सब पसंद होता है। आमतौर पर इन्हीं आनन्ददायी गतिविधियों के क्षणों में ही बच्चों में शिक्षा से सच्चा लगाव पैदा होता है। साथ ही ऐसे कौशल का विकास, आनंद और सफलता, बच्चे में शिक्षा के प्रति रुचि, रुझान और अभिप्रेरण का वह मार्ग खोल देते हैं जो कि शिक्षण-प्रक्रिया का अनिवार्य घटक है।

बच्चा अपनी सृजनशीलता और सौंदर्यचिंतन में स्वतंत्र रूप से पुस्तकों की मदद लेने लगे तो यह शैक्षिक उपक्रम की अहम् उपलब्धि है। डेविड कहते हैं, ''मेरे विचार में... एक बच्चे को आप जब पढ़ना सिखा देते हैं तो आपका काम पूरा हो जाता है। अब तीसरा काम बचा रहता है उसे अधिक से अधिक जानने के लिए उत्साहित करना। असल चीज यही है, कोई भी वयस्क यदि पढ़ना जानता है तथा अधिक पढ़ने-सीखने-जानने की ललक उसमें है तो वह जो चाहे सीख सकता है।''

इसलिए डेविड शिक्षण में शिक्षक की भूमिका को अलग तरह से देखते हैं तो यह स्वाभाविक ही है— ''शिक्षक के बारे में मेरी अवधारणा बहुत भिन्न है। एक शिक्षक का काम पढ़ाना नहीं बल्कि ऐसा वातावरण तैयार करना है जिसमें प्रत्येक बच्चा अपने स्तर पर चीजों को सीख सके। सामान्यतः हम एक शिक्षक की कल्पना एक ऐसे व्यक्ति के रूप में करते हैं जो बहुत कुछ जानता है और इस जानकारी को दूसरे तक पहुंचाने का काम करता है।... मूल बात बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में शरीक करना है।'' इस प्रकार शिक्षक की भूमिका एक मार्गदर्शक की है।

शिक्षा को लेकर डेविड के सोच और मौजूदा शिक्षा-प्रणाली की विसंगति को समझकर ही डेविड द्वारा रचित पुस्तकों का महत्त्व आंका जा सकता है। डेविड की शिक्षा-दृष्टि शिक्षा-नियोजकों से मेल नहीं खाती। शिक्षा-नियोजन शिक्षा के मार्फत ऐसे लोगों को तैयार करते हैं जिनकी तंत्र को जरूरत है। इसके

लिए वे विद्यार्थी को कुछ सूचनाओं से लैस करना चाहते हैं, इससे पूर्व उसे किसी तरह पढ़ना-लिखना सिखा दिया जाता है।

डेविड मानते थे कि मौजूदा शिक्षा अब सूचनाओं तक सिमट कर रह गई है। पहली जमात में बच्चे के दाखिले से लेकर बी.ए. पास होने तक उसकी शिक्षा-यात्रा में पूरा जोर, बेहतर से बेहतर गति के साथ खंड-खंड सूचनाओं को कंठस्थ कर लेने, फिर उसी तेजी से सीखी हुई इन सूचनाओं को भूलते जाने पर होता है। शिक्षा में सीखे हुए ज्ञान की प्रामाणिकता के लिए मूल्यांकन एक तकनीकी अनिवार्यता है, तो उसके लिए इस प्रणाली में ऐसी ही मूल्यांकन प्रविधि विकसित कर बच्चों पर थोप दी गई है।

डेविड इस मूल्यांकन-पद्धति पर प्रहार करते हुए कहते हैं चूंकि अनेक सृजनशील गतिविधियां और कौशल ऐसे हैं जिनका मूल्यांकन इस प्रविधि में कर पाना संभव नहीं है, इसलिए उन्हें उपेक्षित कर दिया गया है। कला, शिल्प, संगीत, नृत्य, नाटक, गायन, बागवानी, और विमर्श जैसे क्षेत्र लगभग नकार दिए जाते हैं। सूचना-प्रधान होने के कारण मूल्यांकन पाठ्यपुस्तकों का भी चरित्र और भूमिका बदल देता है। ''बच्चे जब अपनी रचनात्मक ऊर्जा के चरम पर होते हैं, बारह-तेरह साल की उम्र में, परीक्षा के दबाव में उन्हें रचनात्मकता के उन रास्तों को बंद करना पड़ता है क्योंकि परीक्षा को बहुत अनिवार्य माना जाता है।''

पाठ्यपुस्तकों का इस परीक्षा-प्रणाली ने किस तरह स्वरूप बदल डाला है और डेविड पाठ्यपुस्तकों को लेकर कैसे उससे भिन्न सोचते हैं, इस संदर्भ में डेविड को उद्धृत करना बेहतर होगा : ''...साधारणतः विज्ञान की पुस्तकों में एक तरफ मेंढ़क का चित्र बना होगा और दूसरी तरफ बताया गया होगा कि मेंढ़क के चार टांगें होती हैं, एक जीभ होती है और वह कीट-पतंगों को खाता है। और पृष्ठ के पिछले भाग पर सवाल होंगे- 'एक मेंढ़क के ... टांगें होती हैं?' अब बच्चा खाली स्थान को भर कर खुश होगा जैसे उसने कोई बड़ा तीर मार लिया और वह अगले पृष्ठ की तरफ बढ़ जाएगा। मेरी पुस्तकें इससे भिन्न हैं। उनमें बच्चों से चीजों को तलाश कर उनका अवलोकन करने और फिर उसे दर्ज करने को कहा जाता है। इसी तरह आगे बढ़ते हुए उनसे अपने अवलोकन अथवा अपने द्वारा दर्ज की गई बातों का विश्लेषण करने को कहा जाता है। विज्ञान में बहुत सारे पहलू होते हैं और उसमें बहुत ज्यादा विविधता की गुंजाइश रहती है। इन दिनों शिक्षा में सही उत्तर बताने को बहुत बड़ी बात मान लिया गया है। मेरी पुस्तकें इस अर्थ में अलग हैं कि उनमें सवालों को खुला छोड़ दिया गया है और वे सही उत्तर से ज्यादा महत्त्व खुली बहस को बढ़ावा देने को देती हैं।''

प्रश्नोत्तरी का यह उथला क्रम शिक्षा के आरंभिक स्तर पर पाठ्यपुस्तकों को माध्यम के बजाय लक्ष्य में बदल देता है अर्थात् पाठ्यपुस्तक के तथ्यों को कंठस्थ कर लेना सफलता की कुंजी है, सारे सही उत्तर पाठ्यपुस्तक में मौजूद हैं और उससे बाहर कुछ नहीं है। लेकिन आगे चलकर 'सफलता की कुंजियां' पाठ्यपुस्तक का स्थानापन्न हो जाती हैं और पाठ्यपुस्तक जो शिक्षार्थी को स्वतंत्र पुस्तकों की ओर आकर्षित कर सकती थी, अब खुद पृष्ठभूमि में चली जाती है। इस प्रसंग में डेविड का यह दृष्टांत देखें : ''कुछ लोगों ने वैकल्पिक विषय अंग्रेजी लिया हुआ है। उनके पाठ्यक्रम में कुछ पुस्तकें हैं, मान लीजिए कि 'रिचर्ड थर्ड' और 'टेल ऑफ टू सिटीज'। कोई शिक्षार्थी इन पुस्तकों को नहीं पढ़ेगा। पढ़ना तो दूर वे उन्हें खरीद कर भी नहीं लाएंगे। वे इन पुस्तकों के बारे में कुछ निबंध याद कर लेंगे और परीक्षा में वही लिख आएंगे। अब जो लोग पाठ्यक्रम बनाते हैं, परीक्षा लेते हैं और जो पढ़ाते हैं- वे सब खुश हैं कि छात्र साहित्य पढ़ रहे हैं जबकि वास्तव में ऐसा कुछ हो ही नहीं पा रहा।''

डेविड कोई ऐसे पाठ्यपुस्तक रचयिता नहीं हैं जो शिक्षा जगत की जमीनी हकीकत से दूर अपने अध्ययन कक्ष में बैठकर और काल्पनिक बच्चों को ध्यान में रखकर झटपट किताब लिख डालते हैं। कहना न होगा कि ऐसे लोगों का पुस्तक-उत्पादन शिक्षा प्रणाली की मांग और पूर्ति व्यवस्था के अंतर्गत होता है। इनके विपरीत डेविड एक ऐसे शिक्षा-चिंतक, शिक्षक और लेखक थे जो जीवनपर्यन्त शिक्षा-प्रयोग से जुड़े रहे। वे बच्चों में ऐसी जीवन-दृष्टि के विकास के लिए तत्पर रहे, जिससे बच्चे जीवन और जगत के बारे में स्वयं अपनी धारणाएं निर्मित करते हुए स्वतंत्र ज्ञानार्जन करते रह सकें। लेकिन डेविड की रची ऐसी पाठ्यपुस्तकों को उत्कृष्टता के बावजूद उतनी अहमियत नहीं मिली, जो मिलनी चाहिए थी। एक तो इन पाठ्यपुस्तकों की सफलता के लिए यह जरूरी था कि शिक्षक तथ्यों को रटने की बजाय चीजों को समझने और समझकर सीखने को प्रोत्साहित करने वाला दृष्टिकोण चुनें और मार्गदर्शक की अपनी विशिष्ट भूमिका को पहचानें। लेकिन शिक्षक अक्सर डेविड की पाठ्यपुस्तकों को इस रूप में प्रयुक्त करने में असफल हुए। डेविड का एक वृतांत इस विडंबना को व्यक्त करता है : ''मैंने पर्यावरण संबंधी कुछ पुस्तकें भी बच्चों के लिए लिखी हैं... बच्चों से पर्यावरण अध्ययन की अपेक्षा की गई है जबकि शिक्षक नहीं चाहते कि बच्चे पर्यावरण का अध्ययन करें। वे कुल मिलाकर इतना ही चाहते हैं कि बच्चे पूरे मन से पुस्तकों को याद कर लें। यहां तक कि बहुत अच्छे माने जाने वाले शिक्षक भी किसी पाठ्यपुस्तक का नाश करके रख देते हैं। दो साल पहले मैं दिल्ली आया तो मेरे

एक दोस्त ने बताया कि उसकी मित्र स्कूल में पढ़ाती हैं और वहां मेरी पुस्तकें ही लगी हुई हैं तो वह मुझसे बात करना चाहती हैं। मैंने कहा, ठीक है, उन्हें बुलवा लो। वह नाश्ते पर आईं, तब मैंने पूछा कि पहले तो आप यह बताइए कि आप स्कूल में क्या करती हैं ?

मेरी पुस्तक में पेड़ों के बारे में एक अध्याय है जिसमें कहा गया है कि स्कूल के रास्ते में आप कितने तरह के पेड़ों को देखते हैं ? क्या आप उनमें से किसी पेड़ का नाम जानते हैं ? क्या आपको उन पर पत्ते दिखाई देते हैं ? आप उन पत्तों को अपनी पुस्तक में बना कर देखिए, आदि। मैंने उनसे कहा कि आप मुझे ठीक-ठीक बताइए कि कक्षा को आप कैसे पढ़ाती हैं ? तब उन्होंने जवाब दिया 'मैं किताब लेकर पढ़ती हूं— पेड़। आप कितनी तरह के पेड़ देखते हैं ? इसके बाद में ब्लैक बोर्ड पर पेड़ों के नाम लिख देती हूं और बच्चे अपनी कापी में उन्हें उतार लेते हैं और उन्हें याद कर लेते हैं। फिर अगले दिन मैं पूछती हूं कि बताइए, आपने कौन-कौन से पेड़ देखे ?'— विश्वास नहीं होता। यह स्थिति तो दिल्ली के प्रतिष्ठित स्कूल की है। आप सोच सकते हैं कि दूसरे स्कूलों में क्या हुआ होगा ?''

शिक्षक इस प्रणाली के पुर्जे हैं। वे डेविड की पुस्तकों को सही तरह प्रयुक्त नहीं कर पाए, इसलिए वे पुस्तकें स्कूलों में बहुत 'सफल' नहीं हो पाईं। फलतः डेविड की पर्यावरण और विज्ञान पर लिखी पुस्तकों की पुस्तक-बाजार में मांग घट गई, जबकि ये किताबें, खासकर विज्ञान की पुस्तकें उन्होंने बहुत उम्मीद से लिखी थीं। तदनंतर अंग्रेजी की पाठ्यपुस्तकों में डेविड ने चले आ रहे ढर्रे को तोड़ने का बहुत ज्यादा प्रयास नहीं किया, तथापि ये पुस्तकें विशिष्ट हैं। रोजलिन से साक्षात्कार में डेविड ने अंग्रेजी पाठ्यपुस्तकों के मामले में अपनी इस सीमा को गहरी वेदना के साथ स्वीकार किया है : ''इनके लिए बाजार को भी ध्यान में रखना पड़ता है, वर्ना न कोई उन्हें पढ़ेगा, न स्कूलों में लागू की जाएंगी, और अगर किसी पुस्तक को कोई स्कूल लागू नहीं करता तो प्रकाशक उसे बाजार से निकाल बाहर कर देते हैं। मेरी पुस्तकें भी एक तरह का समझौता तो हैं ही। आप वैसी पुस्तक नहीं लिख सकते, जैसी कि आप लिखना चाहते हैं क्योंकि कोई उसे खरीदेगा नहीं।''

आज भी वही शिक्षा-प्रणाली अधिक मजबूती से कायम है जिसके प्रतिकार में डेविड ने बहुआयामी शैक्षिक हस्तक्षेप किया था, किन्तु डेविड की पाठ्यपुस्तकें प्रकाशन-बाजार से बाहर हो चुकी हैं। ऐसे में मोन्टेन की वह उक्ति फिर याद आ रही है जिससे हमने अपनी बात शुरू की थी। डेविड ने इसे उस समय (1974)

जितना प्रासंगिक पाया था, तब से दो दशक से ज्यादा समय गुजर गया है और [illegible] उतनी ही नई और उन्मेषकारी है।

डेविड ऑसबरॉ ने विपुल मात्रा में पाठ्यपुस्तकों और पाठ्येत्तर शिक्षण सहायक सामग्री की रचना की है। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस उनकी [illegible] का एकमात्र प्रकाशक रहा, हालांकि उन्होंने सरकारी [illegible] लिए भी कार्य किया। यहां उनकी कुछ प्रमुख पुस्तकों और [illegible] का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

ब्लैकबोर्ड का उपयोग

बच्चों को भाषा (अंग्रेजी) सिखाने में ब्लैकबोर्ड के उपयोग पर डेविड ऑसबरॉ ने एक पुस्तिका 'हाऊ टू यूज द ब्लैकबोर्ड इन टीचिंग इंगलिश' तैयार की, जिसमें स्वयं डेविड के बनाए रेखांकन हैं। इस किताब [illegible] तकनीक को समझाते हुए उन्होंने लिखा है कि भाषा सिखाने के शुरुआती वर्षों में ब्लैकबोर्ड की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। लेकिन इसके लिए जरूरी है कि शिक्षक द्वारा ब्लैकबोर्ड पर बनाए गए रेखांकन अच्छे हों। ये रेखांकन बोर्ड पर जल्दी बनाए जाएं और इन्हें जैसा बताया जा रहा है वैसे दिखें भी। इससे भाषा सिखाने में कैसे मदद मिलेगी- यही इस पुस्तिका का विषय है।

डेविड ऑसबरॉ ने पुस्तिका की भूमिका में लिखा है कि चित्रकार तैयार करना इसका उद्देश्य नहीं है। बहुत सारे रेखांकन ऐसे हैं जिनके लिए किसी विशिष्ट कौशल की आवश्यकता नहीं हैं, बल्कि थोड़े से अभ्यास की जरूरत है। कोई भी शिक्षक कुछ समय के नियमित अभ्यास से यह कौशल अर्जित कर सकता है।

पुस्तक में सिद्धांततः यह तकनीक बताई गई है— कभी डस्टर प्रयुक्त नहीं करें, (जब तक कि रेखांकन का उपयोग पूरा नहीं हो जाता और आपको दूसरा रेखांकन बनाने के लिए स्थान की आवश्यकता न हो।) इसके लिए शिक्षक पुस्तक में निर्दिष्ट तरीके से एक के बाद दूसरी रेखा खींचकर अभ्यास कर सकते हैं। पुस्तक में निर्मित रेखांकनों के साथ यह सिद्धांत है— 'इन्हें मिटाएं नहीं'। डेविड के विद्यालय की शिक्षण सामग्री में भी रबर नहीं होता था।

भाषा-शिक्षण में प्रयुक्त बहुत सारे रेखांकनों का संपूर्ण दृश्य साम्यता की बजाय प्रतीकात्मक अर्थ लिए होता है। लिखित वर्ण से पहले आकृति सीखना बच्चे के लिए आसान होता है। बच्चे जल्दी ही इन प्रतीकों को सीख लेते हैं, यदि

कक्षा में लगातार इन प्रतीकों का अभ्यास कराया जाए। इस तरह बच्चों के सीखने का समय भी बचता है।

[illegible] ब्लैकबोर्ड पर सीधे किसी शब्द को सिखाना उतना बेहतर अभ्यास नहीं है [illegible] बनाकर उसमें शब्द का रेखांकन करके सिखाया जाए। बच्चों [illegible] और दोहरापन में भी रेखांकन शिक्षक के लिए काफी उपयोगी है। [illegible]

ब्लैकबोर्ड पर रेखांकन के लिए शिक्षक को शीघ्र और स्पष्ट लिखने का भी अभ्यास करने की जरूरत है। पुस्तक में दिए गए विभक्ताक्षर और संयुक्तक्षरों के लिए प्रयुक्त रेखांकन इसमें शिक्षक की काफी मदद कर सकते हैं। गति, स्पष्टता और सुंदरता ही इन रेखांकनों की प्रमुख विशेषता हो सकती है।

पुस्तक के अनुक्रम में इन रेखांकनों को कई उपशीर्षकों में रखा गया है। इन उपशीर्षकों के अन्तर्गत [illegible] वाले रेखांकनों पर लेखक की ओर से संक्षिप्त टिप्पणी दी गई है। पुस्तक के अंत में रेखांकनों की विवरणी दी गई है।

इटैलिक कॉपीबुक्स

यह पुस्तक श्रृंखला बच्चों के अंग्रेजी भाषा में सुलेख के अभ्यास के लिए तैयार की गई है। बच्चे शुरू में देखकर लिखना सीखते हैं। शुरू की दो पुस्तकें पैंसिल की मदद से अक्षरों को अलग-अलग लिखने के लिए हैं जबकि अगली पुस्तकों में अक्षरों को मिलाकर लिखने के लिए अभ्यास दिए गए हैं। पुस्तकों में शिक्षक के लिए निर्देश हैं कि वे पहले अक्षरों व शब्दों की बनावट को ब्लैकबोर्ड पर बच्चों को समझा दें।

सोचें और करें

'थिंकिंग एण्ड डूइंग' पुस्तक बच्चों को सोचने और करने के लिए प्रेरित करती हैं। जहां बहुत सारी ऐसी पुस्तकें, विशेषकर शुरुआती कक्षाओं के लिए तैयार की गई, बच्चों को रट कर सीखने अथवा नकल करके सीखने या ऐसे ही किसी ढर्रे को ध्यान में रखकर लिखी जाती हैं, उनसे विपरीत यह पुस्तक बच्चों के विचार और क्रियाशीलता के लिए अनेक अभ्यासों से सुसज्जित है।

यह पुस्तक ऐसे बच्चों के लिए है जिन्होंने अभी स्कूल आना शुरू किया है और पुस्तक से उनका वास्ता पहली बार पड़ा है। पुस्तक में बच्चे को अनेक

कौशल विकसित करने के लिए अवसर जुटाए गए हैं, साथ ही बच्चा विभिन्न अनुशासनों से संबंधित अवधारणाएं निर्मित कर सकता है।

पहला ही कौशल जो बच्चे को सीखना होता है, वह पैंसिल का प्रयोग है, बच्चा नकल करके, बिन्दुओं पर पैंसिल फेरकर, पहेलियां सुलझाकर और इस पुस्तक में दी गई ऐसी ही अनेक चीजों द्वारा इस कौशल को अर्जित कर सकता है।

साथ ही, शिक्षा आरंभ करने के शुरुआती दिनों में ऐसी अवधारणाएं निर्मित करना बहुत जरूरी है जो आगे की शैक्षिक प्रक्रियाओं से जुड़ जाती हैं। पुस्तक में स्थानिक संबंधों, पढ़ने की प्रक्रिया के लिए जरूरी भेद करने और अवधारणात्मक संबंधों के प्रचुर अभ्यास दिए गए हैं।

पुस्तक अनेक गणितीय अवधारणाओं की निर्मिति में भी मदद करती है। इसमें एक से दस तक की संख्याएं, संख्याओं के क्रम, ज्यामितीय आकृतियां और विभिन्न आकारों से अवगत कराया गया है।

पुस्तक बच्चे के निकट परिवेश के बारे में कुछ मात्रा में वैज्ञानिक जानकारियां देने का आधार रखती है। यह बच्चों को पेड़ व पत्तियों, फल व सब्जियों और अपने आसपास की ऐसी अनेक चीजों को देखने के लिए प्रेरित करती है जो उसे आगे दुनिया को समझने के लिए जरूरी तार्किक समझ और अवधारणाएं निर्मित करने में सक्षम बनाती हैं।

पुस्तक में बच्चे को साधारण हस्तकला, मिट्टी व कागज के उपयोग, और रोजमर्रा की चीजों से कोलाज और मॉडल बनाने के बारे में सिखाया गया है। 'आओ बात करें' पाठों में दिए चित्रों के आधार पर शिक्षक बच्चों से बातचीत कर सकते हैं। शैक्षिक खेलों के द्वारा ध्यान से देखने और याद रखने की क्षमताएं विकसित की जा सकती हैं।

पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ में शिक्षक की मदद के लिए संक्षिप्त टिप्पणी दी गई है। लेकिन यह ध्यान रखा गया है कि शिक्षक को निर्देशों में ज्यादा नहीं बांधा जाए ताकि उसे स्वयं नए तरीके खोजने और प्रत्येक पृष्ठ को अपनी तरह ब्लैकबोर्ड पर समझाने की गुंजाइश रहे।

बच्चों के पाठ्यक्रम में सामान्यतः ऐसी रुचिकर चीजों की अनुपस्थिति मिलती है और प्राथमिक कक्षाओं में पढ़ाई छोड़ने वाले बच्चों की भारी तादाद का एक प्रमुख कारण यह भी है। यद्यपि इस पुस्तक की योजना औपचारिक कक्षाओं को ध्यान में रखकर तैयार की गई है लेकिन अनौपचारिक कक्षाओं में भी पुस्तक उतनी ही उपयोगी हो सकती है, चाहे वे दो-तीन घंटे चलने वाली सांध्य कक्षाएं

हों या सामान्य शाला के लिए पूरक शिक्षा कार्यक्रम।

जो अभिभावक अपने छोटे बच्चों में चिंतन के विकास के इच्छुक हैं और उन्हें सृजनात्मक गतिविधियों से संबद्ध करना चाहते हैं, वे भी इस पुस्तक का स्वतंत्र इस्तेमाल कर सकते हैं।

स्प्रिंग रीडर्स

बच्चों को अंग्रेजी सिखाने के लिए डेविड ऑसबरॉ ने 'स्प्रिंग रीडर्स' शृंखला की आठ पुस्तकें तैयार कीं। इन किताबों की योजना भारतीय विद्यालयों की विभिन्न श्रेणियों को ध्यान में रखकर बनाई गई थी। इन किताबों पर भाषा के पाठ्यक्रम, कार्य-पुस्तिकाओं की एक अच्छी शृंखला और शिक्षक द्वारा मौखिक रूप से कराए जाने वाले अभ्यासों के साथ काम किया जाना था।

इन पुस्तकों की विषयवस्तु रुचिकर है जिसे रंगीन चित्रों से सजाया गया है। शुरुआती किताबों में ध्वनि प्रयोगों का पर्याप्त अभ्यास कराया गया है। इस शृंखला का प्रथम उद्देश्य तो बच्चों को अंग्रेजी पढ़ना सीखना और इसे पढ़ने में आनंद का अनुभव कराना है। हालांकि इसके लिए यह जरूरी है कि पहले शिक्षक पाठों में आने वाले शब्द और उनकी संरचना से बच्चों को मौखिक रूप से अवगत करा दें। शिक्षक किन्हीं वस्तुओं, चित्रों और क्रियाकलापों के जरिए शब्द -संरचनाओं का सार्थक वाक्यों में प्रयोग करके बताएं।

शुरुआती भाषा-शिक्षण श्यामपट्ट के जरिए कराया जा सकता है। 'देखो और बोलो' शब्दों का परिचय उपयुक्त चित्रों द्वारा कराया जाए और किताबों में इन्हें पढ़े, उससे पहले ही शब्द की ध्वनि भी समझा दी जाए।

इन किताबों की पाठ्यवस्तु विविध है- भारतीय लोक कहानियों, महाकाव्यों की कहानियों एवं विश्व साहित्य के समृद्ध खजाने से बच्चों के लिए रचनाओं का चयन किया गया है। किताबों में कुछ पाठ मनोरंजन के लिए हैं तो कुछ बच्चों को चिंतन हेतु प्रोत्साहित करने के लिए। प्रत्येक पाठ में विषयवस्तु आधारित प्रश्न और भाषा अभ्यास हैं।

'स्प्रिंग रीडर्स' शृंखला की छठी से आठवीं पुस्तकें पहले की पुस्तकों के काम को आगे बढ़ाने वाली तो हैं ही लेकिन पढ़ने के क्षेत्र को धीरे-धीरे व्यापक बनाती हैं। छठी पुस्तक में तो बहुत सारे पाठ साधारण ही रखे गए हैं। सातवीं और आठवीं पुस्तकों के गद्य और पद्य दोनों में छात्रों को स्वतंत्र लेखन से अवगत कराया गया है।

सातवीं पुस्तक में बच्चों के लिए विख्यात पुस्तकों से अंशों का चयन किया गया है। आठवीं पुस्तक में विश्व साहित्य से गद्य-पद्य रचनाओं का चयन किया गया है। इन रचनाओं के चयन के दो आधार रहे हैं : पहला, विविध लेखकों के साहित्य से रुचिकर रचनाएं सुलभ कराना और दूसरा बच्चों की पढ़ने की भूख को शांत करते हुए उन्हें ख्यात रचनाकारों की मूल पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करना।

इन तीनों पुस्तकों में संदर्भ प्रश्न नहीं दिए गए हैं, बल्कि शिक्षकों से यह अपेक्षा की गई है कि वे बच्चों की समझ के स्तरानुसार उनसे अभ्यास कराएं।

ये पुस्तकें भाषा की सामग्री न होकर पठन-सामग्री ही हैं, इसलिए यह सलाह दी गई है कि इन्हें बच्चों को अच्छे से भाषा-शिक्षण पाठ्यक्रम के साथ जोड़कर पढ़ाया जाए और साथ ही साथ खूब सारे मौखिक और लिखित अभ्यास कराए जाएं।

स्प्रिंग रीडर्स कार्य-पुस्तिकाएं

'स्प्रिंग रीडर्स' पुस्तक शृंखला का शिक्षकों ने व्यापक स्वागत किया तो स्प्रिंग रीडर्स की कार्य पुस्तिकाएं (वर्क बुक्स) तैयार की गईं। कार्य-पुस्तिकाओं में बच्चों के लिए पढ़ने-लिखने के अभ्यास प्रचुर मात्रा में दिए गए। चूंकि देखकर लिखने के अभ्यास तो शुरू में ही करा दिए जाते हैं, इसलिए यहां बच्चों को शब्द और चित्रों की मदद से स्वयं अपने वाक्य लिखने के लिए प्रेरित किया गया है। बच्चों द्वारा स्वयं लिखने का अभ्यास और सृजनात्मक लेखन भाषा और व्याकरण सिखाने के सबसे कारगर तरीके हैं। कार्य-पुस्तिकाओं में वाक्य रचना, व्याकरण और वाक्य विन्यास यानी भाषा संरचना सिखाने के लिए प्रचुर मात्रा में अभ्यास दिए गए हैं।

पुस्तिकाओं के अंत में शिक्षक के लिए निर्देशात्मक टिप्पणी दी गई है। उनके लिए पहला सुझाव यह है कि वे हर पाठ पुस्तिका में कराने से पहले बच्चों से मौखिक कक्षा में करवा लें। दूसरा सुझाव यह है कि कार्य-पुस्तिका में बच्चे द्वारा किए गए काम को जांचने के बाद अभ्यास-पुस्तिका में एक बार फिर से कराएं।

बच्चे को वाक्य रचना के लिए जो उत्प्रेरक शब्द-बंध और चित्र दिए गए हैं, शिक्षक कुछ वैसे और उत्प्रेरक जैसे पहेली इत्यादि काम में ले सकते हैं। जो बच्चे आगे चल रहे हैं उनके लिए ऐसे अभ्यास बहुत उपयुक्त होंगे।

आओ, विज्ञान खोजें

'आओ विज्ञान खोजें' (लेट्स डिस्कवर साइंस) शृंखला की पुस्तकें बच्चों में अपने आप सीखने के बुनियादी कौशल के विकास में पर्याप्त मदद करती हैं। ऐसी अनेक चीजें हैं जो बच्चे अपने आप सीख सकते हैं। बच्चों को यथासंभव ऐसे विचार दिए जा सकते हैं जो उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण और सोच का निर्माण कर सकें। इस तरह के पाठ्यक्रम की प्रकृति में प्रतिस्पर्धा और श्रेणीकरण को स्थान नहीं दिया जा सकता। बच्चों के वैज्ञानिक खोजों के रोमांच का आनंद लेने और अन्य प्रयोगों के लिए प्रोत्साहन इस दिशा में महत्त्वपूर्ण काम है। इसके लिए कक्षा की प्रत्येक गतिविधि में समूह-शिक्षण को अनिवार्य स्थान दिया जाना चाहिए।

पुस्तक शृंखला की भूमिका में कहा गया है कि जब बच्चों को महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक अवधारणा सिखानी है तो जरूरी हो जाता है कि दूसरी ऐसी गैर-वैज्ञानिक अवधारणा को तोड़ा भी जाए जो प्रचलित पहलुओं के जरिए उसके मस्तिष्क में जगह बनाए हुए हैं।

इस तरह का एक विचार यह है कि पाठ्यपुस्तकें कोई दैवी प्रकार की चीजें हैं जिन्हें हमें बिना कोई शंका किए स्वीकार करना है, निगलना है और परीक्षा में वापस उगलना है।

एक विचार यह है कि प्रत्येक प्रश्न का यह एक ही सही उत्तर होता है और वह सही उत्तर पाठ्यपुस्तकों के शब्दों के बीच हमेशा कहीं छुपा रहता है।

एक और विचार है कि प्रत्येक प्रभाव किसी एक कारण के द्वारा होता है, यह नहीं कि वह कई सारे कारणों का परिणाम होता है जबकि अक्सर ऐसा ही होता है।

कोई शिक्षक किस प्रकार ऐसी धारणाओं का निराकरण कर सकता है? बच्चों को सवाल करने के लिए प्रोत्साहित करके, खुद प्रयोग द्वारा प्रदर्शित करके और अनुमानों पर चर्चा द्वारा। शिक्षक को खुद अपना निर्णय स्थगित रखकर बच्चों से खूब सारा अभ्यास करवाना चाहिए और किसी नतीजे पर जल्दी से कूदने की बजाय बच्चों के प्रयोग का धैर्यपूर्वक अवलोकन करना चाहिए। शिक्षक को बच्चों से अक्सर यह कहना चाहिए कि ऐसा क्यों है, हम नहीं जानते, और आओ पता करें।

इन पांच पुस्तकों की शृंखला में बच्चों को अनेक अवधारणाएं बनाने और कौशल विकसित करने के लिए अवसर हैं। निश्चय ही, पाठ्यपुस्तक वैज्ञानिक

मसलों पर आधारित हैं किन्तु जोर सदैव पाठ्यवस्तु में दी गई सूचनाओं पर न होकर अवधारणाओं की निर्मिति और कौशलों के विकास पर है।

अवलोकन, रिकार्डिंग, ऐसी रिकार्डिंग के विश्लेषण और इन विश्लेषणों के व्यावहारिक अनुप्रयोग पर शुरुआती चरणों में ही जोर दिया गया है। इनके लिए और कई व्यावहारिक कौशल दिए गए हैं-

- रेखांकन और अनुकरण-लेखन का अभ्यास
- भाषा के सटीक उपयोग का अभ्यास
- तार्किक संगति के अनुरूप अनुमान लगाना
- छपे हुए निर्देशों के अनुसार काम करने का अभ्यास कराना।

भूमिका में कहा गया है कि बच्चे में वैज्ञानिक ज्ञान के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करना ही ऐसी किसी पुस्तक के रूपाकार का निर्धारक होना चाहिए। बच्चों को सीखी हुए अवधारणा और कौशल अनुप्रयोग के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, ताकि बच्चे जो भी पुस्तकों से सीखते हैं उसका दैनंदिन जीवन और परिवेश में व्यवहार कर सकें।

पुस्तक में जहां जरूरी समझा गया है, वहां शिक्षक के लिए टिप्पणियां दी गई हैं।

जीवन को जानें

'जीवन को जानें' (लर्निंग अबाउट लिविंग) पुस्तक शृंखला (पांच किताबें) पर्यावरण-अध्ययन के लिए हैं जिनमें बच्चे के निकट परिवेश के सभी पहलुओं को समाविष्ट किया गया है। इसी के साथ, जैसा कि पुस्तक शृंखला के नाम से ही स्पष्ट है, इनकी विषयवस्तु में पूरी दुनिया के पर्यावरण की बातें हैं। इस पुस्तक शृंखला में सारतः यह दृष्टिकोण अपनाया गया है—

- शुरुआती पुस्तकों में बच्चे के खुद के अनुभवों को वर्णित किया गया है।
- वह बच्चों को खुद अपने, अपने दोस्तों और पड़ोसियों के बारे में सूचनाएं एकत्रित करने और इन्हें व्यवस्थित तरीके से प्रस्तुत करने में मदद करती हैं।

  यह बच्चों को कई महत्त्वपूर्ण और उपयोगी कौशल सीखने और आजमाने का अवसर प्रदान करती हैं, यथा अनुकृति करना, चित्र बनाना, अवलोकन और रिकार्डिंग, संकलन, मापन और मानचित्रण।

  यह बच्चे में अपने इर्द-गिर्द की दुनिया की खूबसूरती और उसके रहस्यों के प्रति संवेदन के अनुभव संसार से बाहर की विराट दुनिया के बारे में सहज जिज्ञासु बनाती हैं।

  ये विविध प्रकार की गतिविधियों का सूत्रपात करती हैं। प्रत्येक पृष्ठ बच्चे को कुछ न कुछ करने की आवश्यकता लिए है, भले ही इसे वह कक्षा में करे या कक्षा के बाहर। यह पाठ्यपुस्तक में लिखने या चित्रित गतिविधि करने से संबंधित हो सकती है या कक्षा से बाहर, घर या खेल के मैदान में करने के लिए कोई परियोजना हो सकती है।

इनमें सूचना अर्जित करने की प्रक्रिया बताई गई है और ऐसे व्यावहारिक कौशल हैं जिन्हें बच्चा दूसरे साथी बच्चों और शिक्षक के साथ खुशी-खुशी सहयोगपूर्वक प्रतिस्पर्धाहीन माहौल में विकसित कर सकता है।

एक शृंखला के रूप में ये किताबें शहरी और ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों में प्रयुक्त की जा सकती हैं। ये किताबें शहरी बच्चों को गांव के बारे में और ग्रामीण बच्चों को शहरों के बारे में बताती हैं।

ये पुस्तकें अपने आसपास की प्रत्येक चीज के प्रति बच्चे को जिज्ञासु और प्रश्नाकुल बनाती हैं, उसमें सवाल करने की आदत पैदा करती हैं। बच्चे को सूचना उपलब्ध कराने की बजाय उसे सूचना हासिल करना सिखाने की कोशिश की गई है। जब वह ऐसा करने लगता है तो अपनी खोज के परिणामों को विश्लेषित भी कर सकता है और इस प्रक्रिया से अर्जित ज्ञान का व्यावहारिक उपयोग कर सकता है।

यह पुस्तक शृंखला किसी परीक्षण और प्रतिस्पर्धी उपक्रम को अवकाश नहीं देती। बच्चों का समूह में कार्य और एक-दूसरे से सीखना-सिखाना किसी भी परीक्षा या अंक प्रणाली से कहीं ज्यादा प्रभावी है।

यहां कंठस्थ कर सीखने का प्रावधान नहीं है।

चार लघु नाटक

डेविड ऑसबरॉ ने बच्चों के लिए चार लघु नाटकों की रचना की है। ये नाटक हैं— स्वतंत्रता का नृत्य (डांस ऑफ फ्रीडम), तेनाली राम और जासूस (तेनाली राम एण्ड दी स्पाई), तीन कदम (द थ्री स्टेप्स) और चार राजा (द फोर किंग्स)। ये चारों नाटक न केवल पढ़ने में रुचिकर हैं बल्कि मंचित किए जा सकते हैं। नाटकों में एक विशेष स्तर की भाषा शैली प्रयुक्त की गई है जो बच्चे चार-पांच

वर्ष से अंग्रेजी सीख रहे हैं, वे इस भाषा को आसानी से व्यवहार कर सकते हैं। नाटकों के अंत में प्रश्नोत्तर, चर्चा के लिए बिन्दु, शब्द-सूची, मंच-योजना, प्रदर्शन, मंच-सज्जा और वेशभूषा विषयक सुझावों को संयोजित किया गया है।

कहानियां

डेविड द्वारा बच्चों के लिए लिखी कहानियों के दो संकलन प्रकाशित हुए हैं- रनवीर और चीता तथा अन्य कहानियां (रनवीर एंड दी टाइगर एंड अदर स्टोरीज) एवं रॉबिन हुड और अन्य कहानियां (रॉबिन हुड एंड अदर स्टोरीज)। ये कहानियां चौथी से छठी कक्षा स्तर के अंग्रेजी पढ़ने वाले बच्चे पढ़-समझ सकते हैं। संकलनों में परंपरागत और आधुनिक कहानियां हैं जिनमें सामान्य ज्ञान-विज्ञान की जानकारियां और व्यावहारिक गतिविधियों को सम्मिलित किया गया है।